शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 19 अंक 107 (मूल क्रमांक 164)
मई-जून 2026 मूल्य: ₹ 50.00

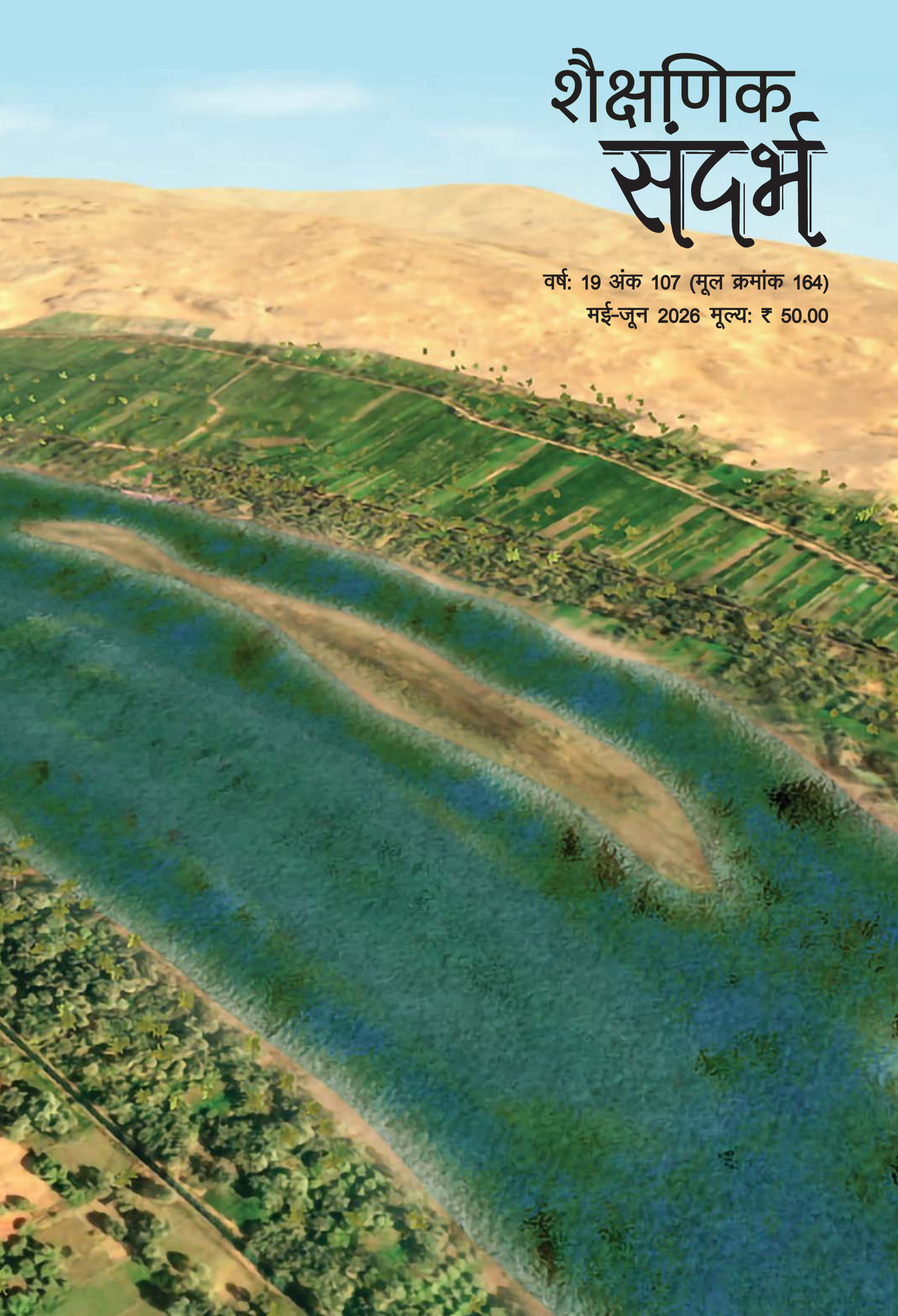

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 19 अंक 107 (मूल क्रमांक 164)
मई-जून 2026 मूल्य: ₹ 50.00

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी मैग्ज़ीन पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	10,000.00

मुखपृष्ठ: नील नदी और उसके किनारे खेतों की तस्वीर। इजिप्त की प्राचीन सभ्यता के समय बड़े-बड़े पिरामिडों के निर्माण के साथ ही, विस्तृत खेती भी हुआ करती थी। ज़ाहिर है, इन तरह के गहन कामों के लिए गणित के गहन ज्ञान की भी ज़रूरत होती होगी। उस समय यह ज्ञान किस तरह विकसित किया जाता था और आँका जाता था, जानने के लिए पढ़िए आमोद कारखानीस का लेख, पृष्ठ 32 पर।

LINK : कवर 1 - https://www.mozaweb.com/sq/Extra-Skena_3D-Ancient_agriculture_in_the_Nile_Valley-45089

कवर 3 - https://www.nytimes.com/2024/07/15/world/europe/flying-ant-day-uk.html

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

आगामी प्रकाशन

चित्र को पढ़ना

“एक तस्वीर हज़ार शब्दों के बराबर होती है”

यह कहावत तो आपने भी सुनी ही होगी।

इसी विषय के इर्द-गिर्द रची गई हमारी यह आगामी किताब बच्चों को चित्रों की दिलचस्प दुनिया से रूबरू होने, उन्हें पढ़ने और उनके इर्द-गिर्द बातचीत करने के मौके देती है।

माधुरी पुरंदरे के बनाए गए रंग-बिरंगे चित्रों से भरपूर इस किताब को प्री-स्कूल से लेकर माध्यमिक स्तर तक के बच्चों के साथ भाषा सीखने-सिखाने को मज़ेदार बनाने के एक साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है।

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

नए विचारों की धीमी गति - शिक्षक प्रशिक्षण...

यदि बच्चे कुछ कॉपी करके लिख लेते हैं, तो क्या इसका मतलब हुआ कि उन्हें लिखना आता है? आम के पेड़ से जुड़े तीन-चार साधारण सवाल-जवाब कर लेना क्या सन्दर्भ आधारित शिक्षण कहलाएगा? शिक्षक भी, इन्सान होने के नाते, कई सारी मान्यताओं के साथ काम करते हैं। मगर क्या वे सभी मान्यताएँ सही होती हैं? शिक्षक प्रशिक्षण सत्रों में ऐसी कई मान्यताओं को परखने के मौके मिलते हैं। आम तौर पर नए विचार पुरानी मान्यताओं को चुनौती देते हुए धीरे-धीरे अपनी जड़ें बनाया करते हैं। और कमलेश चन्द्र जोशी अपने लेख में इसका बयान करते हैं।

41

विशाखा गाइडलाइन्स के तीन दशक

हम सभी को काम करके अपना जीवन चलाने का अधिकार है। मगर कार्यस्थल का वातावरण अच्छा और सुरक्षित हो – अफसोस, ऐसा हमेशा नहीं होता। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मामले दुनियाभर में बड़ी तादाद में सामने आते हैं। ऐसे में, सभी के लिए, खास तौर पर महिलाओं के लिए, कार्यस्थल को सुरक्षित बनाने की खातिर और यौन उत्पीड़न की शिकायतों पर कदम उठाने के लिए भारत में करीब तीन दशक पहले विशाखा गाइडलाइन्स जारी की गई थीं। वहीं से विकसित पॉश कमेटी अब संगठित-असंगठित कार्यक्षेत्रों के लिए लाज़मी है। मगर इन तीन दशकों में इन गाइडलाइन्स और कमेटियों का क्या असर रहा, क्या चुनौतियाँ उभरीं – यह सब माधव केलकर इस लेख में अपने अनुभवों के ज़रिए साझा करते हैं।

56

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-107 (मूल अंक-164), मई-जून 2026

इस अंक में

05 ऐसे बना मानव कंकाल का चित्र
उमेश चौहान

16 *एशेरीशिया कोलाई*
सुशील जोशी

32 नील का तोहफा
आमोद कारखानीस

41 नए विचारों की धीमी गति - शिक्षक प्रशिक्षण के अनुभव
कमलेश चन्द्र जोशी

49 स्कूल में बनी सरकार
अनिल सिंह

56 विशाखा गाइडलाइन्स के तीन दशक
माधव केलकर

69 छिपा हुआ तारा
जयंत विष्णु नारलीकर

82 ईश्वर की कहानियाँ
विष्णु नागर

83 ततैया: अण्डों-बच्चों के लिए बिल बनाती है
कालू राम शर्मा

86 वर्षा आने पर चींटियों व दीमक के पंख क्यों निकल आते हैं?
सवालीराम

आपने लिखा

संदर्भ अंक-161 (नवम्बर-दिसम्बर) में प्रकाशित अमित और जयश्री का लेख *स्कूल के ढाँचे में लोकतंत्र के प्रयोग* अत्यन्त प्रेरक, विचारोत्तेजक और सीख देने वाला है। बच्चों को लोकतंत्र की शिक्षा देने के लिए आपने जिस रचनात्मक और जीवन्त पद्धति का उपयोग किया है, वह सचमुच सराहनीय है। यह प्रयास दिखाता है कि लोकतंत्र केवल पाठ्यक्रम का विषय नहीं, बल्कि बच्चों के रोज़मर्रा के व्यवहार, संवाद और निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा भी बन सकता है।

आपकी मेहनत और दूरदृष्टि, दोनों ही स्पष्ट रूप से झलकती हैं। हम भी अपने आवासीय विद्यालय में इस प्रकार के प्रयास लम्बे समय से करते आ रहे हैं और अपने अनुभव से कह सकते हैं कि ऐसे प्रयोग आसान नहीं होते। इसमें अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ आती हैं। बच्चों में स्वायत्तता, उत्तरदायित्व और सामूहिक निर्णय की समझ विकसित करने के लिए केवल योजना ही नहीं, बल्कि गहरी दूरदृष्टि के साथ-साथ अत्यधिक धैर्य और सहनशक्ति की आवश्यकता होती है। आपने इस यथार्थ को बहुत सहजता से समझा और अभिव्यक्त किया है।

इस लेख की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि आपने पूरे प्रकरण को अत्यन्त सरल, रोचक और ज्ञानवर्धक भाषा में प्रस्तुत किया है। जटिल शैक्षणिक प्रक्रिया को इस तरह लिख पाना स्वयं में एक उपलब्धि है। यह लेख न केवल प्रेरित करता है बल्कि अन्य शिक्षकों के लिए मार्गदर्शन का काम भी करता है।

आप इस प्रक्रिया को निरन्तर जारी रखें – यही काम धीरे-धीरे बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों की सशक्त आधारशिला रखता है। हम भी इस प्रक्रिया से गुज़रे हैं और अभी भी गुज़र रहे हैं। यह बहुत चुनौती भरा कार्य है।

आप दोनों को इस सार्थक और साहसी शैक्षिक प्रयास के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

नीलेश देसाई, झाबुआ, म.प्र.
(फेसबुक पोस्ट से साभार)

संदर्भ अंक-159 (जुलाई-अगस्त) में प्रकाशित अस्फिया की सच्ची कहानी *ग्रीन थाई करी* पढ़ी। बहुत ही सुन्दर। उन्होंने जो वहाँ महसूस किया, उसको बहुत सुन्दर तरीके से शब्दों में पिरोया। एक नए देश में जाना और एक ऐसी महिला से मिलना जो अपने क्षेत्र में खासा नाम रखती हैं, उनकी सादगी। यह सच में सीखने लायक चीज़ है। विनम्रता और सादगी किसी भी इन्सान को बेहतर से बेहतरीन बना देती है। एक महिला का दूसरे देश जाना और वहाँ महिला मित्र बनाना महज़ एक इत्तेफाक हो सकता है लेकिन दोनों के बीच के संवाद बहुत खास हैं। इसे पढ़ते समय नरेश पासवानजी के चित्र हमें कहानी को महसूस करने में मदद करते हैं।

संदर्भ की पूरी टीम को साधुवाद जो इतने सुन्दर लेखों को पाठकों के सामने लाती है। विविधता होने के साथ-साथ हर बार बेहतरीन लेखों का संकलन समेटे हुए।

प्रेरणा मालवीय
अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन
भोपाल, मप्र.

ऐसे बना मानव कंकाल का चित्र

उमेश चौहान

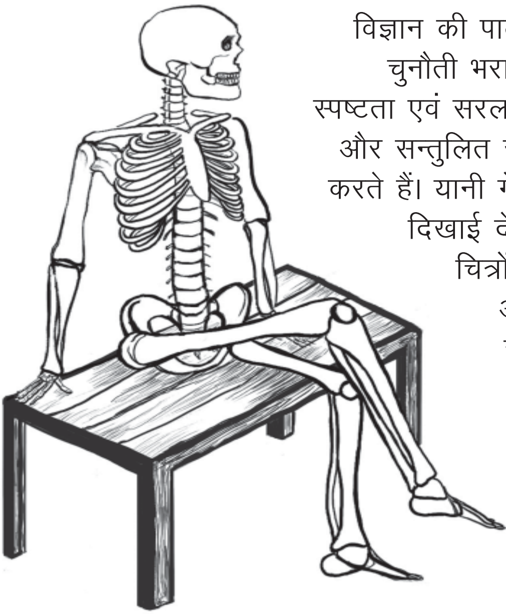

चित्र: *अदिति पुत्तिगे*

विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में चित्र बनाना एक चुनौती भरा काम होता है क्योंकि ये चित्र स्पष्टता एवं सरलता के साथ-साथ सही अनुपात और सन्तुलित सामाजिक नज़रिए की माँग भी करते हैं। यानी गेंदे का फूल गेंदे के फूल जैसा दिखाई दे और सटीक डीटेलिंग भी हो। चित्रों में परखनली, हथेली-उँगलियों आदि का अनुपात सही होने के साथ-साथ चित्रों में दिखाए गए विद्यार्थियों में लड़के-लड़कियों की मौजूदगी होने मात्र से काम नहीं चलने वाला। इन चित्रों में लड़कियाँ भी प्रयोग करते हुए दिखाई देनी चाहिए। आखिरकार, विज्ञान लड़कों-लड़कियों, दोनों का ही पसन्दीदा विषय हो सकता है।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) के तहत *बाल वैज्ञानिक* पाठ्यपुस्तकों में जहाँ एक ओर, चित्रांकन के लिए प्रोफेशनल चित्रकारों एवं डिज़ाइनरों की मदद ली गई थी, वहीं दूसरी ओर चित्रांकन में कुशल शिक्षकों को भी मौके दिए गए। एक रिसोर्स शिक्षक उमेश चौहान का ‘चित्रकार’ के रूप में होविशिका में सफर कैसा रहा, उसे उनकी ही ज़ुबानी यहाँ बताया जा रहा है।

मैंने सन् 1970 में मध्य प्रदेश के हरदा ज़िले के टिमरनी स्थित राधा स्वामी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से गणित-विज्ञान विषयों के साथ हायर सेकेंडरी (11वीं) परीक्षा उत्तीर्ण की थी। कक्षा 9वीं से 11वीं तक हमारे विज्ञान शिक्षक प्रयोगशाला में ले जाकर हमें आवश्यक वैज्ञानिक प्रयोग स्वयं करके देखने और सीखने के अवसर देते थे। उन दिनों विधिवत प्रैक्टिकल नोटबुक बनाना अनिवार्य था और प्रायोगिक परीक्षा भी होती थी। मुझे विज्ञान के प्रयोग करने में बहुत आनन्द आता था, हालाँकि हमने जीव विज्ञान विषय नहीं पढ़ा था।

सिविल ड्रॉइंग से शुरुआत

कक्षा 11वीं तक की पढ़ाई के बाद पारिवारिक परिस्थितियों के कारण मेरी आगे की शिक्षा रुक गई। इसके बाद मैं वन विभाग में दैनिक वेतनभोगी के रूप में काम करने लगा। सन् 1972 में टिमरनी क्षेत्र में तवा नहर का निर्माण कार्य चल रहा था। तवा कॉलोनी, टिमरनी में सब-इंजीनियर सरदार गोविंद सिंह बग्गा को ऐसे टाइमकीपर* की आवश्यकता थी, जिसे गणित-विज्ञान का ज्ञान हो और थोड़ी-बहुत ड्रॉइंग-चित्रकारी भी आती हो। मैंने उनसे सम्पर्क किया। उन्होंने उसी दिन मुझे नहरों के एस्टीमेट की प्रतिलिपियाँ तैयार करने और उनकी डिज़ाइन आदि बनाने के काम पर नियुक्त करवा दिया। अपनी अच्छी हैंडराइटिंग और साफ-सुथरी ड्रॉइंग-पेंटिंग के कारण मैं शीघ्र ही नहर विभाग में अपनी अलग पहचान बनाने लगा था।

करीब तीन वर्ष बाद शिक्षा विभाग में सहायक शिक्षकों की भर्ती के लिए चयन परीक्षा आयोजित हुई, जिसमें मैं उत्तीर्ण हो गया। इसके बाद मुझे बुनियादी प्रशिक्षण संस्था, खंडवा में प्रशिक्षण हेतु प्रवेश-पत्र प्राप्त हुआ और मैंने वहाँ दाखिला ले लिया। शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान प्रत्येक विषय के 40-40 लेसन प्लान पढ़ाना अनिवार्य था। मैंने एक ही दिन में तीन अलग-अलग विषयों के पाठ पढ़ाते हुए मात्र डेढ़ माह में सभी विषयों के लेसन प्लान पूरे कर लिए। विज्ञान विषय की योजना में मैं प्रयोग-पद्धति का अधिक उपयोग करता था, इसलिए मेरी कक्षा में विद्यार्थियों के साथ-साथ अन्य प्रशिक्षणार्थी शिक्षक भी बैठकर शिक्षण पद्धति सीखते थे।

जुलाई, 1976 में मुझे शासकीय माध्यमिक शाला, धौलपुर कला में विज्ञान शिक्षक के रूप में नियुक्ति मिली। उन दिनों विद्यालय में विज्ञान किट या प्रयोग सामग्री के नाम पर लगभग कुछ भी उपलब्ध नहीं था। मैंने स्थानीय स्तर पर उपलब्ध

* *उन दिनों आम तौर पर पद का नाम टाइमकीपर होता था लेकिन काम के तहत कन्स्ट्रक्शन सुपरविज़न भी शामिल होता था।*

वस्तुओं से वैकल्पिक उपकरण तैयार किए और जिन प्रयोगों को सम्भव था, उन्हें कक्षा में करके दिखाया। बच्चों में विज्ञान के प्रति बढ़ती रुचि और जिज्ञासा को देखकर मैं विज्ञान प्रयोग की अवधारणा को अधिक स्पष्ट और प्रभावी ढंग से समझाने का निरन्तर प्रयास करता रहा।

होविशिका प्रशिक्षण में

सन् 1978 में पहली बार मुझे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत ट्रेनिंग लेने के लिए होशंगाबाद जाने का आदेश मिला। मैंने कक्षा-6 के इस प्रशिक्षण में पूरी तन्मयता से भाग लिया। इस प्रशिक्षण के दौरान पहली बार मुझे जीव विज्ञान के प्रयोग करने का अवसर मिला। इन प्रयोगों के प्रति मेरी जिज्ञासा लगातार बढ़ती गई। मैं अपनी नोटबुक में प्रयोगों से सम्बन्धित साफ-सुथरे और सुडौल चित्र बनाता था, जो अन्य प्रशिक्षणार्थियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाते थे। प्रशिक्षण के बाद कक्षाएँ शुरू होने पर, विद्यालय में विज्ञान किट सामग्री आने तक मैंने पहले उन अध्यायों को पढ़ाया, जिनके लिए विशेष प्रयोग सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

अगले साल, सन् 1979 में जब मैं कक्षा 7वीं का प्रशिक्षण लेने पहुँचा, तब पहली बार मैंने मानव शरीर की हड्डियों और कंकाल के बारे में विस्तार से पढ़ा। डॉ. अनिल सद्गोपाल, जिन्हें सभी 'अनिल भाई' कहकर सम्बोधित करते थे, ने हमें मानव कंकाल की विभिन्न हड्डियों के नामों से परिचित कराया। उन्होंने शरीर के अलग-अलग भागों में हड्डियों की संख्या गिनने के तरीके सिखाए और उनसे सम्बन्धित जानकारी भी दी। उस समय प्रचलित पाठ्यपुस्तकों में मानव कंकाल के बड़े और स्पष्ट चित्र उपलब्ध नहीं थे। जो चित्र थे, उन्हें देखकर हड्डियों का आकार, उनके जोड़, जोड़ों के प्रकार तथा नरम एवं कठोर हड्डियों की संरचना को समझना कठिन था।

प्रशिक्षण के दौरान हमें 'मानव कंकाल' भी दिखाया गया। कुछ शिक्षक उसे देखकर बुरी तरह घबरा गए, कुछ दूर जाकर बैठ गए और कुछ ने तो नाक पर कपड़ा तक रख लिया। लेकिन मैंने कंकाल के पास जाकर उसकी हड्डियों और जोड़ों को ध्यान से समझने का प्रयास

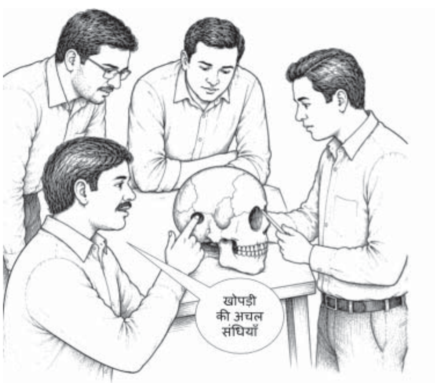

किया। खोपड़ी, कूल्हे की हड्डी, रीढ़ की हड्डी, कन्धे के जोड़ और कूल्हे के जोड़ जैसी संरचनाओं के चित्र बनाकर मैंने उनमें उभार और स्पष्टता लाने का प्रयास किया।

मैंने अपने बनाए हुए चित्र अनिल भाई को दिखाए जिन्हें वे चित्र बहुत पसन्द आए। उन्होंने मेरा नाम और पता पूछकर अपनी डायरी में लिख लिया। यह देखकर मैं थोड़ा घबरा गया। मुझे लगा कि शायद मैं बहुत अधिक प्रश्न पूछ रहा था और बार-बार उठकर कंकाल के पास जाकर, कहीं मैं अनुशासनहीनता तो नहीं कर रहा था! अपनी शंका दूर करने के लिए मैं कक्षा के बाहर जाकर अनिल भाई से मिला और पूछा, "आपने मेरा नाम क्यों नोट किया है? कहीं मैं...।" मेरी बात पूरी होने से पहले ही उन्होंने कहा, "मैं कल बताऊँगा कि तुम्हारा नाम क्यों लिखा है।"

अगले दिन अनिल भाई फिर कक्षा में आए और मुझे बाहर बुलाकर ले गए। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा, "उमेश भाई, आप बहुत अच्छे चित्र बनाते हो। क्या आपको चित्रकारी या पेंटिंग का पहले से कोई अनुभव है?"

मैंने कहा, "जी, मैं टिमरनी में सिनेमा के पोस्टर लिखता हूँ तथा चित्रों को काट-छाँटकर उनसे कोलाज भी बनाता रहता हूँ।"

उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, "यह तो और भी अच्छी बात है। मैं आपको कक्षा-7 की *बाल वैज्ञानिक* पुस्तक के 'अपनी हड्डियाँ पहचानो' अध्याय के चित्र बनाने के लिए किशोर भारती के बनखेड़ी कैम्पस में आमंत्रित करने का विचार कर रहा हूँ। क्या आप वहाँ आ सकेंगे? आपके रहने-खाने की व्यवस्था किशोर भारती में ही रहेगी। आने-जाने का किराया आदि भी संस्था द्वारा वहन किया जाएगा। इस कार्य के लिए आपको ज़िला शिक्षा अधिकारी से शासकीय आदेश भी प्राप्त हो जाएगा।"

मैं ऐसा सुनहरा अवसर खोना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने तुरन्त अपनी सहमति दे दी।

किशोर भारती के कैम्पस में

अनिल भाई के आमंत्रण पर मैं अपने स्कूल के बच्चों की शिक्षा और मार्गदर्शन की चिन्ता किए बिना, उनके बताए अनुसार पैसेंजर ट्रेन से रात लगभग आठ बजे बनखेड़ी रेलवे स्टेशन पर उतर गया। वहाँ मैं रेलवे केबिनमैन के पास गया और उससे पूछा कि किशोर भारती कैसे पहुँचा जा सकता है। उसने बताया, "किशोर भारती पहुँचने के लिए पलिया गाँव की ओर जाने वाले किसी मोटरसाइकिल या साइकिल सवार के हाथ एक सूचना-पत्र भेज दीजिए कि आप यहाँ पहुँच चुके हैं। वहाँ से कोई व्यक्ति आपको लेने आ जाएगा, क्योंकि यहाँ से जाने की और कोई

व्यवस्था नहीं है।" मैंने एक चिट्ठी लिखकर अनिल भाई के पास भिजवा दी और फिर केबिनमैन के पास बैठकर अपना खाना खा लिया। लगभग एक घण्टे बाद कमल महेंद्रू और मच्छिंद्र भाई साइकिल और टॉर्च लेकर मुझे लेने आ गए।

उन्होंने केबिनमैन से पूछा, "क्या यहाँ उमेश चौहान सर बैठे हैं?" मैं कमल भाई को पहले से जानता था। उनके साथ साइकिल के कैरियर पर बैठकर मैं कुछ ही देर में किशोर भारती पहुँच गया। वहाँ मेरे ठहरने की व्यवस्था एक कमरे में कर दी गई। अगली सुबह अनिल भाई ने साधना सक्सेना, कमल भाई, मच्छिंद्र भाई, पूर्णिमा पंड्या आदि से मेरा परिचय कराया। साथ ही, उन्होंने मेरे किशोर भारती आने का उद्देश्य भी सभी को बताया।

चित्र बनाने की शुरुआत

अनिल भाई ने मेरे लिए ड्रॉइंग शीट, पेंसिल, रबर तथा रंगीन स्केच पेन आदि की व्यवस्था करवा दी। मुझे मानव शरीर की हड्डियों को पहचानने, उन्हें स्पर्श करके महसूस करने तथा यथासम्भव उनकी गिनती करने से सम्बन्धित प्रयोगों के चित्र तैयार करने थे। इसके लिए यह भी निर्धारित करना था कि शारीरिक मुद्राएँ कैसी होंगी और उन मुद्राओं के स्पष्ट चित्र कैसे बनाए जाएँ। साथ ही, कक्षा में इन गतिविधियों को कराने हेतु आवश्यक दिशा-निर्देश भी लिखने थे।

इस कार्य में सहयोग के लिए किशोर भारती के कुछ बच्चे मिल जाते थे। मैं उन्हें अलग-अलग मुद्राओं में खड़ा करके शरीर की हड्डियों के उभारों के चित्र बनाता जाता था।

उदाहरण के लिए, हाथ की हड्डियों के जोड़ों को समझाने हेतु कुछ गतिविधियाँ इस प्रकार थीं-

- अपनी कोहनी को दूसरे हाथ से हल्के-से दबाओ तथा बाँह को मोड़ो और सीधा करो।
- अपनी कलाई को कसकर पकड़ो और हथेली को चित्र में बताए अनुसार घुमाओ।

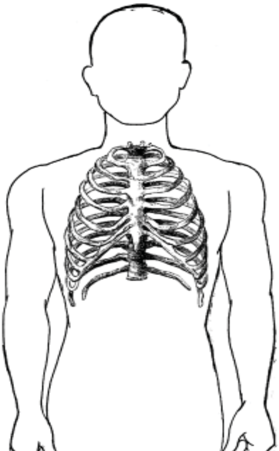

पसलियाँ

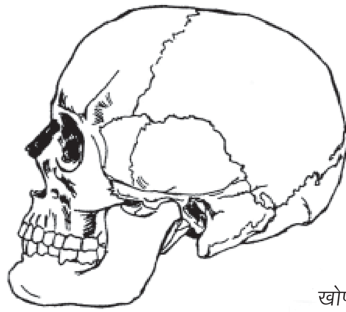

खोपड़ी

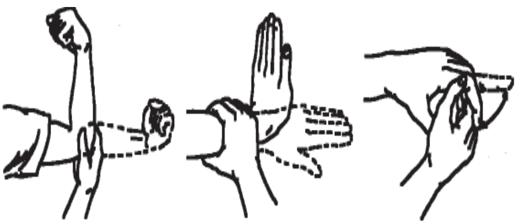

हाथ की हड्डियों के जोड़

रीढ़ की हड्डियों के जोड़

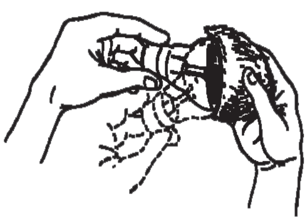

बॉल एंड सॉकेट जॉइंट के लिए नारियल की नट्टी और बल्ब का मॉडल

कन्धे की हड्डी और बाँह का जोड़

कूल्हे की हड्डी और टाँग का जोड़

सभी चित्र बाल वैज्ञानिक कक्षा-7 से साभार।

- अपनी उँगली के किसी जोड़ को दूसरे हाथ से पकड़ो और उँगली को ऊपर-नीचे हिलाओ।

“क्या इन गतिविधियों के दौरान तुम्हें हाथ की हड्डियों के जोड़ महसूस होते हैं?”

इसी प्रकार निचले जबड़े की हड्डी और खोपड़ी के ऊपरी भाग के जोड़ को महसूस करना, हँसली और पसलियों की पहचान करना तथा यह समझना कि वे किन-किन हड्डियों से जुड़ी रहती हैं – इन सबके लिए भी विभिन्न गतिविधियाँ तैयार की गईं। कमर में कूल्हे की हड्डी, घुटने का जोड़, रीढ़ की हड्डी तथा कंधे की हड्डी को महसूस करने हेतु अनेक मुद्राओं में खड़े होकर यह देखा गया कि कौन-सी मुद्रा में उनका उभार सबसे अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। फिर सबसे उपयुक्त मुद्रा का चयन करके, उसके बारे में लिखा गया और चित्र भी बनाए गए। यह पूरा कार्य वास्तव में अत्यन्त रोचक और मज़ेदार अनुभव रहा।

इसी प्रकार ‘बॉल एंड सॉकेट जॉइंट’ (कन्दुक-खल्लिका जोड़) की संरचना को स्पष्ट करने के लिए नारियल की नट्टी और बल्ब के मॉडल का चित्र बनाकर समझाया गया। वहीं ‘हिंज जॉइंट’ (कब्ज़ा जोड़) की अवधारणा स्पष्ट करने के लिए उँगली, कोहनी और घुटने के जोड़ों के चित्रों को एकसाथ दर्शाया गया तथा उनके साथ एक कब्ज़े का चित्र जोड़कर यह समझाया गया कि यह जोड़ किस प्रकार मुड़ता है।

बाँह की निचली हड्डियों को महसूस करने की गतिविधियाँ, मेरुदण्ड की संरचना तथा कशेरुकाओं की बनावट को चित्रों और प्रयोगात्मक गतिविधियों के माध्यम से कैसे समझाया जाए – इसे भी विस्तार से लिपिबद्ध किया गया। अन्त में, पैर के पंजे की मेहराब को समझाने के लिए एड़ी से पंजे की ओर बनने वाली मेहराब तथा अँगूठे से छोटी उँगली की दिशा में बनने वाली मेहराबों को दो कमानियों के चित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया, ताकि उन्हें समझा और महसूस किया जा सके।

उपरोक्त सभी गतिविधियाँ तथा शरीर के विभिन्न अंगों में पाई जाने वाली हड्डियों की पहचान कराने के प्रयोग करते हुए यह महसूस हुआ कि उस समय की पाठ्यपुस्तकों में दिए गए मानव कंकाल के चित्र या तो मात्र सांकेतिक थे या पर्याप्त स्पष्ट नहीं थे। इसलिए अनिल भाई ने इन्दौर के डॉक्टर प्रकाश छजलानी, जो उन दिनों किशोर भारती आए हुए थे, से इस विषय में चर्चा की कि पाठ्यपुस्तक के लिए मानव कंकाल का एक बड़ा और स्पष्ट चित्र तैयार करना आवश्यक है।

कंकाल का चित्र

इन्दौर मेडिकल कॉलेज के एनॉटॉमी विभाग की एक वरिष्ठ

मैडम को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक मिडिल स्कूल का विज्ञान शिक्षक मानव कंकाल का अध्ययन करके, पाठ्यपुस्तक के लिए चित्र बनाने जा रहा है। वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने मुझे मानव कंकाल से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें उपलब्ध कराईं और म्यूज़ियम खुलवाकर वहाँ एक टेबल तथा कुर्सी की व्यवस्था भी करवा दी।

दरवाज़े के पास लटके एक कंकाल की ओर संकेत करते हुए कहा, “आप इसे हिलाकर-डुलाकर देख सकते हैं। इसके जोड़ों पर स्प्रिंग और धातु की पट्टियाँ लगी हैं, जिनकी सहायता से इसे घुमाया और मोड़ा जा सकता है।” इतना बताकर वे चली गईं। उनका कार्यालय पास ही था। उन्होंने यह भी कहा, “यदि किसी भी चीज़ की ज़रूरत हो तो आप मेरे पास आ सकते हैं। जाते समय म्यूज़ियम में ताला लगाकर, उसकी चाबी मेरे पास छोड़ दीजिएगा।”

उनके जाने के बाद मैंने अपने बैग से ड्रॉइंग शीट, पेंसिल, पेन आदि निकालकर टेबल पर रखे और कुर्सी पर बैठ गया। बैठते ही मेरी नज़र दरवाज़े के दाईं ओर गई। वहाँ अलग-अलग आकार के लगभग आठ-नौ कंकाल लटके हुए थे। पहली बार एकसाथ इतने सारे कंकाल देखकर मैं घबरा गया और पसीने से तर-बतर हो गया।

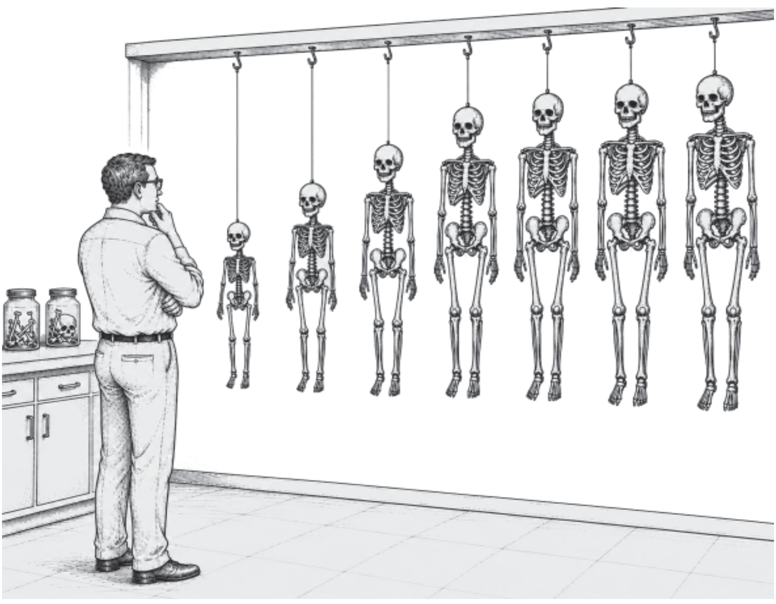

कुछ देर बाद मैंने खुद को सँभाला, और हिम्मत जुटाकर कंकाल की आउटलाइन बनाकर चित्र तैयार करना शुरू किया। देखते-देखते कॉलेज बन्द होने का समय हो गया। अतः मैंने म्यूज़ियम के दरवाज़े पर ताला लगाया, चाबी मैडम को सौंप दी और अगले दिन आने का समय पूछ लिया।

जूनी इन्दौर में मेरे मामाजी रहते थे, इसलिए रात्रि विश्राम के लिए मैं उनके घर चला गया। लेकिन पहली रात मेरी नींद जैसे गायब हो गई थी। सपने में भी मैं मानव कंकाल को छूकर देख रहा था। अचानक नींद खुली तो एहसास हुआ कि मैं तो मामाजी के घर पर हूँ। फिर कुछ हिम्मत जुटाकर मैंने अपने मन को शान्त किया और दोबारा सोने की कोशिश करने लगा।

मैं प्रतिदिन कॉलेज के म्यूज़ियम में बैठकर मानव कंकाल की हड्डियों और उनके जोड़ों को बारीकी-से समझता और उनके काले-सफेद चित्र बनाता था। मेरे बनाए चित्रों को देखकर कुछ प्रशिक्षणार्थी डॉक्टर मुझसे परिचय करते और मेरे कार्य के बारे में पूछते थे। उन्हें यह जानकर आश्चर्य होता था कि एक मिडिल स्कूल का शिक्षक पाठ्यपुस्तकों के लिए ऐसे चित्र कैसे बना सकता है, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह कार्य तो किसी विशेषज्ञ चित्रकार का ही हो सकता था। हालाँकि, उनमें से कुछ लोग मुझे प्रोत्साहित भी करते थे और मेरी पीठ थपथपाकर आगे बढ़ जाते थे।

कुछ दिनों की मेहनत के बाद मैं मानव कंकाल का लगभग 28 इंच लम्बा चित्र और अनेक छायाचित्र एवं रेखाचित्र तैयार करके किशोर भारती लौट आया। अनिल भाई ने मेरे बनाए चित्र देखे तो वे बहुत प्रसन्न हुए। मानव कंकाल का जैसा चित्र वे चाहते थे, वह अब उनके सामने था। उन्होंने मेरे बनाए चित्रों में से कुछ चित्र *बाल वैज्ञानिक* कक्षा-7 के 'अपनी हड्डियाँ पहचानो' अध्याय के लिए चुन लिए। इसके बाद उन्होंने मुझे उस अध्याय की पाण्डुलिपि देते हुए कहा, "इसे ध्यान से पढ़िए। इसमें दिए गए प्रयोगों और गतिविधियों के अनुरूप अपने बनाए चित्रों तथा अध्याय की भाषा को पढ़कर यदि कहीं कोई सुधार आवश्यक लगे, तो उसे लिखकर बता दीजिए। हम उसमें आवश्यक संशोधन कर देंगे।"

अपना कार्य पूरा करके जब मैं टिमरनी लौटने लगा, तब अनिल भाई ने मुझसे कहा, "उमेश भाई, शायद आप नहीं जानते कि मानव कंकाल का चित्र बनाकर आपने कितना महत्वपूर्ण काम किया है। यह केवल चित्रकारी नहीं, बल्कि एक प्रकार का अनुसन्धान है। इस चित्र के साथ आपका नाम हमेशा याद रखा जाएगा।"

कितनी हड्डियाँ कहाँ-कहाँ?

हमारे शरीर में हड्डियों की संख्या 206 कैसे बनती है? यह तो जानी-मानी बात है कि कूल्हे से खोपड़ी तक ही अधिकांश हड्डियाँ मौजूद हैं। चलिए, ऊपर से ही गिनती करते हैं।

इन्सानी खोपड़ी में 28 हड्डियाँ सन्धियों के मार्फत आपस में जुड़ी हुई हैं। इनमें जबड़े की हड्डी ही हिलती है। बाकी हड्डियाँ अचल हैं।

इन्सानी हाथ में हड्डियों की गिनती इस प्रकार है – प्रत्येक उँगली में 3 हड्डियाँ हैं, अतः 4 उँगलियों में 12 हड्डियाँ और अँगूठे में 2 हड्डियाँ। हथेली में 5 हड्डियाँ हैं। इस प्रकार इनकी संख्या 12+2+5 = 19 हुई। हाथ की कलाई में 8 छोटी हड्डियाँ सटी हुई होती हैं। कलाई से कोहनी तक 2 हड्डियाँ। कोहनी से कन्धे तक 1 हड्डी। इस तरह एक हाथ में पंजे से कन्धे तक कुल 30 हड्डियाँ होती हैं। दूसरे हाथ में भी 30 होंगी। यानी दोनों हाथ मिलाकर 60 हड्डियाँ हुईं।

हमारे सीने में जहाँ टाई लटकी होती है, वहाँ सीने की 1 हड्डी यानी उरोस्थी होती है। इस हड्डी से ऊपर 2 हड्डियाँ (हसली या कॉलर बोन) जुड़ती हैं, जो दोनों कन्धों की हड्डियों यानी अंश मेखला से जुड़ी होती हैं।

सीने की हड्डी के दोनों ओर 10-10 पसलियाँ जुड़ती हैं। इसके अलावा 2-2 स्वतंत्र पसलियाँ होती हैं जो रीढ़ की हड्डी से तो जुड़ी होती हैं लेकिन सीने की हड्डी से नहीं जुड़ी होतीं।

रीढ़ की हड्डी में 33 कशेरुक होते हैं जो इस प्रकार होते हैं – ऊपरी 7 कशेरुक गर्दन में होते हैं, 12 पसलियों से जुड़े होते हैं और 5 पीठ के निचले हिस्से में होते हैं। शेष 9 कशेरुक कमर की दो हड्डियों (श्रोणि मेखला) के मध्य जुड़े होते हैं। बच्चों के एक्स-रे में रीढ़ की हड्डी में 33 कशेरुक देखे जा सकते हैं लेकिन वयस्कों में श्रोणि मेखला के बीच मौजूद 9 कशेरुक जुड़कर एक मज़बूत कशेरुक बना लेते हैं जिसकी वजह से कमर को मज़बूती मिलती है।

इन्सान की टाँगों में भी हाथ की तरह 30-30 हड्डियाँ होती हैं। लेकिन घुटने के ऊपर, जोड़ पर 1-1 अतिरिक्त हड्डी होती है। यानी प्रत्येक पैर में 31-31 हड्डी हुईं।

इन सबको जोड़ने पर हड्डियों की संख्या 214 तक पहुँच जाती है। इनमें श्रोणि मेखला के भीतर 9 कशेरुकों ने जुड़कर एक मज़बूत हड्डी बना ली है। इसलिए 214 में से 8 घटाने पर 206 हड्डियाँ बची रहती हैं। यही इन्सानी शरीर की हड्डियों का आँकड़ा है।

अनिल भाई ने आगे कहा, "अब आप एक चित्रकार बन चुके हैं। कक्षा 7 और 8 की पुस्तकों के लिए आगे भी आपको चित्र बनाने में सहयोग करना होगा।"

अगले वर्ष *बाल वैज्ञानिक* कक्षा-8 के

दोनों भागों के लिए मैंने जीवविज्ञान से सम्बन्धित चित्रों के साथ-साथ अनेक अध्यायों को विकसित करने के लिए स्वयं प्रयोग किए और उनके आधार पर अनेक चित्र भी तैयार किए।

हड्डियों की संख्या कितनी?

हड्डियों और कंकाल के चित्र बनाते समय तथा इस पाठ को कक्षा में पढ़ाते हुए मेरे मन में बार-बार एक प्रश्न उठता था कि मानव शरीर में वास्तव में कुल कितनी हड्डियाँ होती हैं। सामान्यतः कहा जाता है कि एक वयस्क मनुष्य के शरीर में 206 हड्डियाँ होती हैं, जबकि बच्चे के शरीर में लगभग 214 हड्डियाँ पाई जाती हैं।* मैंने अपना यह प्रश्न होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के प्राणी विज्ञान विशेषज्ञ अरविंद गुप्ते जी को भेजा। उन्होंने उत्तर दिया, "तुम्हारा कथन मूलतः सही है। बच्चों के शरीर में हड्डियों की संख्या लगभग 214 होती है, किन्तु वयस्क मनुष्य में रीढ़ की निचली कुछ कशेरुकाएँ आपस में जुड़कर कठोर हड्डियों का रूप ले लेती हैं। अत: अलग-अलग गिनी जाने वाली कुछ हड्डियाँ एक इकाई बन जाती हैं और कुल संख्या घटकर 206 रह जाती है। इसलिए सामान्य जानकारी में मानव शरीर में 206 हड्डियाँ ही बताई जाती हैं।"

---

* *नवजात शिशु के शरीर में लगभग 270 हड्डियाँ और कार्टिलेज होती हैं। समय के साथ इनमें से कुछ हड्डियाँ आपस में जुड़कर एक कठोर हड्डी का रूप ले लेती हैं। यह जुड़ाव मुख्यतः खोपड़ी, रीढ़ तथा कूल्हे की हड्डियों में होता है। इस जैविक प्रक्रिया को 'अस्थीकरण' या ओसिफिकेशन (Ossification) कहा जाता है। विकासक्रम के साथ हड्डियों की संख्या घटती जाती है और किशोरावस्था से वयस्क अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मानव शरीर में सामान्यतः 206 हड्डियाँ मानी जाती हैं।*

उमेश चौहान: राष्ट्रीय स्तर पर एनसीटीई, सीटीईएस जैसी संस्थाओं के एवं प्रदेश स्तर पर एससीईआरटी एवं अनेक शैक्षिक संस्थाओं के मनोनीत सदस्य रह चुके हैं। आपके नवाचारी प्रयोगों का प्रसारण 1990 से 2002 तक दूरदर्शन पर तरंग एवं यूजीसी के कार्यक्रमों के तहत हुआ है। सन् 2011 में आपकी शैक्षिक फिल्म 'मैग्नेट' को राष्ट्रीय विज्ञान काँग्रेस में गोल्डन विवर अवार्ड दिया गया था। साथ ही, आप राज्यपाल एवं राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित शिक्षक हैं।

सभी चित्र: उमेश चौहान।

एशेरीशिया कोलाई

सुशील जोशी

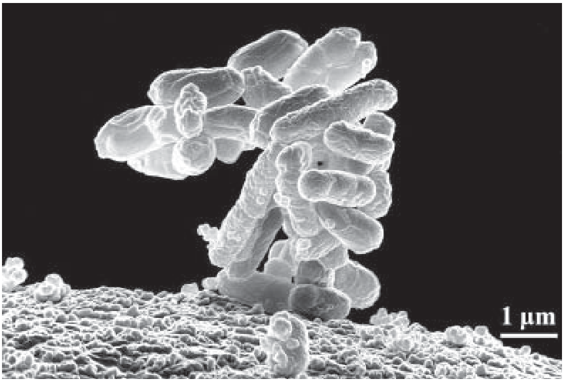

चित्र-1: ई. कोलाई बैक्टीरिया का समूह, 10,000 गुना आवर्धन।

कुछ इतिहास

सन् 1885 में एक जर्मन-ऑस्ट्रियन शिशुरोग विशेषज्ञ, थियोडोर एशेरिश ने नवजात बच्चों की आँतों में से बैक्टीरिया प्राप्त किए थे। ये बैक्टीरिया ग्राम (लेक्टोस निगेटिव) निगेटिव थे, थोड़ी चहलकदमी करते थे और सबसे बड़ी बात थी कि ये कई उपलब्ध कृत्रिम पोषक माध्यमों पर भलीभाँति वृद्धि करते थे। एशेरिश ने इन्हें नाम दिया था *बैक्टीरियम कोलाई कम्यून।* आगे चलकर सन् 1919 में इसे खोजकर्ता के नाम पर *एशेरीशिया कोलाई* (*Escherichia coli* - *ई. कोलाई*) नाम मिला।

उस समय खोजकर्ता को तनिक भी आभास नहीं था कि सूक्ष्मदर्शी में यह साधारण-सा दिखने वाला बैक्टीरिया जीव विज्ञान अनुसन्धान में इतना नाम कमाएगा और कमोबेश आणविक जीव विज्ञान का आगाज़ करने वाला जीव बन जाएगा।

नेचर में प्रकाशित एक समीक्षा पर्चे के अनुसार *ई. कोलाई* कम-से-कम 3,12,000 शोध पत्रों का विषय रहा है। इसी बैक्टीरिया पर अनुसन्धान के लिए 11 नोबेल पुरस्कार मिल चुके हैं (देखिए तालिका-1)।

फिर 1907 में रुडोल्फ मैसिनी ने एक सूक्ष्मजीव का विवरण प्रस्तुत किया – *बैक्टीरियम कोलाई म्यूटेबाइल* (*Bacterium coli mutabile*)। उन्होंने जब

तालिका 1: *ई. कोलाई* अनुसन्धान और नोबेल पुरस्कार

1958	जोशुआ लेडरबर्ग	बैक्टीरिया में लिंग और जेनेटिक पुनर्मिश्रण
1965	फ्रांस्वा जैकब, आंद्रे ल्वॉफ और जैकेस मोनोड	एंज़ाइमों का जेनेटिक नियंत्रण और वायरस संश्लेषण
1969	मैक्स डेलब्रुक, अल्फ्रेड हर्शे और साल्वेडोर लूरिया	*ई. कोलाई* और बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वायरसों (बैक्टीरियोफेज) की मदद से वायरस के प्रतिलिपिकरण की क्रियाविधि और जेनेटिक संरचना
1978	वर्नर आर्बर, डेनियल नाथन्स और हैमिल्टन स्मिथ	*ई. कोलाई* में रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम की खोज व अनुप्रयोग
1980	पौल बर्ग, वाल्टर गिलबर्ट और फ्रेडरिक सैंगर	न्यूक्लिक एसिड के जैव-रसायन पर महत्वपूर्ण अध्ययन जिसमें *ई. कोलाई* ने रीकॉम्बिनेन्ट डीएनए टेक्नॉलॉजी के विकास में अहम भूमिका निभाई
1989	सिडनी आल्टमैन और थॉमस चेक	*ई. कोलाई* पर अनुसन्धान के ज़रिए आरएनए की उत्प्रेरक भूमिका की खोज – आरएनए की एंज़ाइम प्रकृति
2008	ओसामु शिमोमुरा, मार्टिन चाफी और रॉजर त्सिएन	ग्रीन फ्लोरेसेंट प्रोटीन की खोज
2014	एरिक बेटज़िग, स्टीफन हेल और विलियम मोर्नर	कोशिकाओं की अन्दरूनी संरचना के अध्ययन के लिए सुपर-रिसॉल्व्ड माइक्रोस्कोपी का विकास
2015	थॉमस लिंडाल, पौल मॉडरिच और अज़ीज़ शंकर	*ई. कोलाई* पर शोध की मदद से डीएनए मरम्मत की क्रियाविधि की समझ
2021	आर्डेम पेटापुटियन	यांत्रिक-संवेदी चैनल पर अनुसन्धान। इन चैनल्स की खोज प्रारम्भिक रूप से *ई. कोलाई* में की गई थी।
2022	स्वांते पाबो	होमिनिन जीनोम का विकास

इसे प्राप्त किया तो शुरुआत में यह लैक्टोस पाचन में अक्षम (लैक्टोस नेगेटिव) था लेकिन आगे चलकर इसमें कुछ उभार विकसित हो गए जो लैक्टोस का किण्वन यानी फर्मेन्टेशन कर सकते थे। यह खोज थी जिसने *ई. कोलाई* पर आगे अध्ययन की प्रेरणा दी जिसकी बदौलत आणविक जीव विज्ञान का सूत्रपात हुआ।

1940 के दशक में एम. डेलब्रुक और एस.ई. लूरिया *ई. कोलाई* और उसे संक्रमित करने वाले वायरसों (बैक्टीरियोफेज या फेज) पर काम कर रहे थे। उन्होंने पाया कि बैक्टीरिया में उत्परिवर्तन स्वत:स्फूर्त होते हैं। हर्शे और चेज़ यह भी दिखा पाए कि वायरस का जो हिस्सा बैक्टीरिया को संक्रमित करता है, वह डीएनए होता है। लगभग इसी समय एस. बेंज़र ने आनुवंशिकी की कामकाजी इकाई को परिभाषित किया और जे. लेडरबर्ड और ई. टेटम ने यह खोज की कि बैक्टीरिया में लैंगिक पुनर्मिश्रण होता है।

आगे चलकर *ई. कोलाई* तथा उसे संक्रमित करने वाले वायरसों की मदद से पुनर्संयोजित डीएनए (recombinant DNA) तकनीक का विकास हुआ। तो चलते हैं, आणविक जीव विज्ञान के एक लम्बे सफर पर।

चित्र-2: ई. कोलाई के विकास का वीडियो देखने के लिए QR code स्कैन करें।

एक मॉडल जीव के रूप में खूबियाँ

एशेरीशिया कोलाई छड़ के आकार का बैक्टीरिया है जो लगभग 2 से 5 माइक्रोमीटर लम्बा और 0.5 से 1 माइक्रोमीटर चौड़ा होता है। यह इतना बड़ा तो होता है कि सूक्ष्मदर्शी से अवलोकन किया जा सके। एक मॉडल जीव के रूप में *ई. कोलाई* में कई विशेषताएँ हैं। यह तेज़ी-से वृद्धि करता है, इसमें जेनेटिक फेरबदल के लिए कई आणविक तकनीकें उपलब्ध हैं। एक खास बात यह है कि *ई. कोलाई* प्रमुखत: अलैंगिक रूप से अपनी प्रतिलिपियाँ बनाता है – अर्थात् किसी एक बैक्टीरिया के जीनोम में किए गए परिवर्तन कई पीढ़ियों तक बने रहते हैं और इनके असर का अध्ययन लगातार किया जा सकता है।

इन्हीं सब खूबियों के चलते *ई. कोलाई* का उपयोग करके आणविक जीव विज्ञान और आणविक जेनेटिक्स के क्षेत्र में कई प्रमुख खोजें की गई हैं। इनमें जेनेटिक कोड को समझना,

---

ई. कोलाई के विकास का वीडियो यहाँ देखें:
https://en.wikipedia.org/wiki/Escherichia_coli#/media/File:E.coli-colony-growth.gif

डीएनए के प्रतिलिपिकरण की प्रक्रिया की समझ, जीन नियमन की ऑपेरॉन प्रणाली की खोज, और जेनेटिक रूप से परिवर्तित जीव बनाना शामिल हैं।

ई. कोलाई का जीनोम

ई. कोलाई के कई स्ट्रेन (प्रभेद) होते हैं जो आनुवंशिक रूप से थोड़े-थोड़े भिन्न समूह के द्योतक हैं। इनकी रोगजनक क्षमता अलग-अलग होती है। कुछ हैं जो गम्भीर संक्रमण पैदा करते हैं (जैसे O157:H7 स्ट्रेन) जबकि कुछ अन्य रोगजनक नहीं होते। उनकी यह विविधता उनके जीनोम में नज़र आती है। प्रयोगों से पता चला है कि *ई. कोलाई* के K-12 स्ट्रेन (जिसे प्रयोगशाला में पाला जाता है और रोगजनक नहीं है) और O157:H7 तथा CFT073 स्ट्रेन (दोनों रोगजनक) के जीनोम्स के बीच मात्र 39 प्रतिशत समानता है।

ई. कोलाई के सारे स्ट्रेन्स के जीनोम में कुल मिलाकर 16,000 जीन्स होते हैं जिसे पैन-जीनोम कहते हैं लेकिन इस पैन-जीनोम का एक अंश ही किसी स्ट्रेन-विशेष में पाया जाता है – लगभग 20 प्रतिशत। यानी शेष 80 प्रतिशत जीनोम परिवर्तनशील होता है। ये जीन्स बाहर से हासिल किए जा सकते हैं और ये *ई. कोलाई* को चयापचय यानी मेटाबॉलिज़्म में काफी लचीलापन प्रदान करते हैं। परिवर्तनशील जीनोम में नए-नए घटक शामिल करने की इस खूबी के चलते *ई. कोलाई* एक बढ़िया मॉडल बन सका है। 1997 में *ई. कोलाई* उन पहले-पहले जीवों में से था जिसके पूरे जीनोम के डीएनए अनुक्रम का खुलासा हो गया था।

फेज ग्रुप

दरअसल, आणविक जीव विज्ञान के विकास की शुरुआत मैक्स डेलब्रुक और साल्वेडोर ई. लूरिया द्वारा 1940 में 'फेज ग्रुप'* के गठन के साथ मानी जा सकती है, जिसमें आगे चलकर अल्फ्रेड डी. हर्शे भी जुड़ गए थे। इसी के साथ *एशेरीशिया कोलाई* और उसे संक्रमित करने वाले वायरस आणविक जीव विज्ञान अध्ययन की बुनियादी सामग्री बन गए।

मज़ेदार बात यह है कि डेलब्रुक एक क्वांटम भौतिक शास्त्री थे। वे जर्मनी से यू.एस. पहुँचे थे और एमरी हिल्स के साथ बैक्टीरियोफेज पर काम करने लगे थे। सन् 1939 में इन दोनों ने मिलकर बैक्टीरियोफेज की संख्या वृद्धि का एक संख्यात्मक पर्चा प्रस्तुत किया था। दूसरी ओर, लूरिया एक इतालवी डॉक्टर थे और वे भी यूएस पहुँचकर डेलब्रुक के साथ काम करने लगे।

* *फेज ग्रुप वैज्ञानिकों का एक शोध-समूह था, जो बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले विषाणुओं (बैक्टीरियोफेज) का अध्ययन करता था। इस समूह ने जीन की प्रकृति और आणविक जीवविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।*

कुछ प्रमुख खोजों में भागीदार *ई. कोलाई*

बैक्टीरिया में वायरस प्रतिरोध

डेलब्रुक और लूरिया ने बैक्टीरिया में वायरस-प्रतिरोध पर काम करना तय किया। वे यह जानना चाहते थे कि बैक्टीरिया में वायरस के विरुद्ध प्रतिरोध क्या बेतरतीब उत्परिवर्तनों में से चयन के ज़रिए होता है या क्या यह वायरस से सम्पर्क से जनित अनुकूलन का परिणाम होता है। इसके लिए उन्होंने *ई. कोलाई-बी* स्ट्रेन पर प्रयोग किए। उन्होंने कुछ बैक्टीरिया को अलग-अलग संवर्धन नलिकाओं में पनपाया। कुछ समय बाद इन अलग-अलग कल्चर में से बराबर-बराबर आयतन लिए और उन्हें टी-1 नामक फेज से संतृप्त तश्तरियों (पेट्री डिश) में डाल दिया। यह माना गया था कि यदि वायरस के खिलाफ प्रतिरोध सम्पर्क के बाद पैदा होता है तो सारी तश्तरियों में लगभग बराबर-बराबर प्रतिरोधी बैक्टीरिया मिलने चाहिए। प्रयोग में देखा गया कि विभिन्न तश्तरियों में प्रतिरोधी बैक्टीरिया की औसत संख्या में बहुत अन्तर है। निष्कर्ष था कि बैक्टीरिया में प्रतिरोध बेतरतीब उत्परिवर्तनों की वजह से पैदा होता है और यह वायरस की उपस्थिति से स्वतंत्र है। इस प्रयोग को आधुनिक बैक्टीरिया जेनेटिक्स की शुरुआत माना जाता है। इस प्रयोग में उत्परिवर्तन की दर का निर्धारण भी किया जा सका था।

बैक्टीरिया जीन्स का पुनर्संयोजन

इसी दौरान हर्शे भी इस 'फेज ग्रुप' में शामिल हो गए। वे पहले ही *ई. कोलाई* के वायरसों पर शोध करके यह दर्शा चुके थे कि जब एक ही कोशिका में एक से अधिक वायरस उपस्थित हों, तो उनके बीच जेनेटिक पुनर्संयोजन हो जाता है। इसके लिए उन्होंने एक ही *ई. कोलाई* कोशिका को वायरसों के दो संस्करणों से संक्रमित किया। इनसे जो वायरस

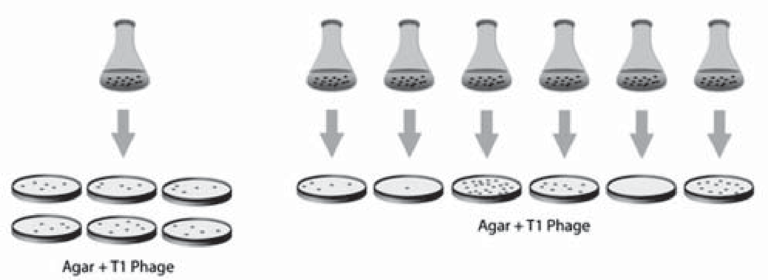

चित्र-3: *डेलब्रुक और लूरिया का प्रयोग*

सन्तति प्राप्त हुई, उनमें मूल वायरस जैसी जेनेटिक संरचना वाले वायरस तो थे ही, साथ में कुछ ऐसे वायरस भी थे जिनमें जीन्स का लेनदेन हो चुका था।

आनुवंशिकी पदार्थ की पहचान

बहरहाल, हर्शे को शोहरत मिली थी मार्था चेज़ के साथ किए गए प्रयोगों से। हर्शे और चेज़ ने टी-2 फेज के डीएनए को रेडियोसक्रिय फॉस्फेट (^{32}P) से चिन्हित कर दिया, और उन्हें *ई. कोलाई* कोशिकाओं को संक्रमित करने दिया। गौरतलब है कि फॉस्फोरस डीएनए में ही पाया जाता है, प्रोटीन में नहीं। इन संक्रमित कोशिकाओं से फेज का प्रोटीन आवरण हटा दिया और फिर संक्रमित कोशिकाओं तथा वायरस के आवरणों को अलग-अलग कर लिया। देखा गया कि रेडियोसक्रियता सिर्फ नीचे बैठ गई बैक्टीरिया कोशिकाओं में उपस्थित थी जबकि ऊपर के द्रव (जिसमें प्रोटीन आवरण थे) में नहीं थी। यानी डीएनए ही बैक्टीरिया कोशिका में प्रवेश कर गया था।

इसी तरह के एक अन्य प्रयोग में उन्होंने फेज को रेडियोसक्रिय सल्फेट से चिन्हित कर दिया, चूँकि सल्फर प्रोटीन में पाया जाता है, डीएनए में नहीं। अलग-अलग करने पर रोडियो-सक्रियता सिर्फ प्रोटीन आवरण में मिली, संक्रमित बैक्टीरिया में नहीं।

इन परिणामों से, हर्शे और चेज़ ने निष्कर्ष निकाला कि आनुवंशिक पदार्थ डीएनए है, प्रोटीन नहीं। यह प्रयोग आनुवंशिकी के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि आनुवंशिक जानकारी का वहन डीएनए करता है, प्रोटीन नहीं।

डेलब्रुक, लूरिया और चेज़ को प्रतिलिपिकरण तथा वायरसों की जेनेटिक संरचना सम्बन्धी खोजों के लिए 1969 में नोबेल से नवाज़ा गया था।

इसके बाद ग्रुप ने तय किया कि वे कई अन्य टी-फेज पर काम करेंगे जो *ई. कोलाई* के बी स्ट्रेन के विरुद्ध सक्रिय होते हैं। इनमें से एक फेज (टी-4) का शानदार उपयोग सीमोर बेंज़र ने किया। यहाँ बताना लाज़मी है कि बेंज़र ने अपना करियर एक सॉलिड स्टेट भौतिक शास्त्री के रूप में शुरू किया था लेकिन इर्विन श्रोडिंगर की पुस्तक *व्हॉट इज़ लाइफ?* से प्रभावित होकर अपने प्रयोगों से उन्होंने साबित किया कि न्यूक्लियोटाइड्स की एक न्यूनतम लम्बाई ही जेनेटिक इकाई होती है, जिसे उन्होंने सिस्ट्रॉन नाम दिया था।

जेनेटिक लेन-देन

द्वितीय विश्व युद्ध की रुकावट के बाद शोध परिणामों का आदान-प्रदान फिर शुरू हुआ। एक तो डेलब्रुक और हर्शे ने फेज वायरसों में जेनेटिक पुनर्संयोजन की अपनी खोज प्रस्तुत की और इसी के साथ जोशुआ

वास्तविकता में बैक्टीरिया में नर और मादा लिंग नहीं होते हैं; वे द्विविभाजन द्वारा अलैंगिक रूप से प्रजनन करते हैं। हालाँकि, संयुग्मन नामक प्रक्रिया को रूपकात्मक रूप से जीवाणु 'सम्भोग' कहा जा सकता है, जहाँ एक दाता (तथाकथित नर) अपने प्लास्मिड डीएनए का एक टुकड़ा प्राप्तकर्ता (तथाकथित मादा) को स्थानान्तरित करता है, जिससे युग्मकों के संलयन के बिना आनुवंशिक जानकारी का आदान-प्रदान होता है।

लेडरबर्ग ने *ई. कोलाई* (स्ट्रेन के-12) पर अपने प्रयोगों के आधार पर दर्शाया कि बैक्टीरिया के बीच लैंगिक पुनर्मिश्रण होता है। आगे बैक्टीरिया जेनेटिक्स पर लगभग सारा अनुसन्धान इसी स्ट्रेन पर हुआ। यह खोज इस मायने में महत्वपूर्ण थी कि बैक्टीरिया में परस्पर जेनेटिक सूचना का लेनदेन हो सकता है जो उन्हें नए गुणधर्म प्रदान कर सकता है। यह खोज बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक्स के खिलाफ प्रतिरोध के तेज़ी-से प्रसार को समझने में मददगार है।

लेडरबर्ग ने ही गुणसूत्र के बाहर जेनेटिक कणों (प्लास्मिड) की खोज की थी। यह खोज उन्होंने अपनी पत्नी एस्थर मिरियम लेडरबर्ग, एन. डी. ज़िंडर और एम.एल. मोर्स के साथ की थी। इसके बाद उन्होंने बैक्टीरिया के बीच जेनेटिक लेन-देन की एक नवीन विधि की खोज की जो बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वायरसों (बैक्टीरियोफेज) के ज़रिए सन्पन्न होती है। यह खोज आगे चलकर जेनेटिक पुनर्संयोजन टेक्नॉलॉजी का आधार बनी।

बैक्टीरिया में जेनेटिक पुनर्संयोजन/ हस्तान्तरण

लेडरबर्ग और टेटम ने काफी परिष्कृत प्रयोगों की मदद से *ई. कोलाई* में जेनेटिक हस्तान्तरण की खोज की (1946)। पुनर्संयोजन सम्बन्धी प्रयोगों के लिए लेडरबर्ग ने टेटम द्वारा विकसित पोषण-बाधित दोहरे उत्परिवर्तियों का उपयोग किया था। अलबत्ता, उस समय वे नहीं जानते थे कि यह *ई. कोलाई* स्ट्रेन (के-12) उन बिरले स्ट्रेन्स में से है जिनमें एफ-प्लास्मिड पाया जाता है। एफ-प्लास्मिड को फर्टिलिटी फैक्टर भी कहते हैं और यह बैक्टीरिया के संयुग्मन में भूमिका निभाता है। प्लास्मिड की खोज का श्रेय भी *ई. कोलाई* की मदद से लेडरबर्ग को ही जाता है।

उनके समूह ने यह भी बताया था कि प्लास्मिड ही नर व मादा बैक्टीरिया के बीच जेनेटिक गुणधर्मों के हस्तान्तरण का साधन होता है। आम तौर पर यह जानकारी है कि कोशिकाओं में जेनेटिक जानकारी गुणसूत्रों में सहेजी गई होती है। लेडरबर्ग व अन्य ने स्पष्ट किया था

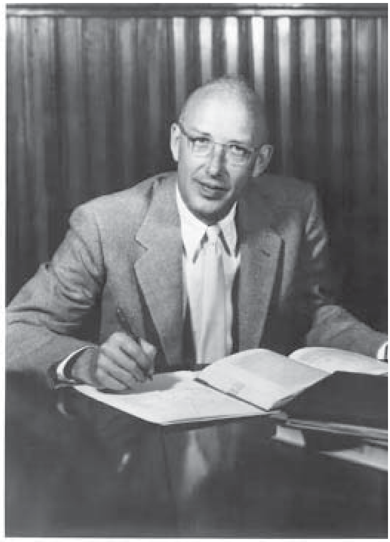

चित्र-4: *लेडरबर्ग और टेटम*

कि बैक्टीरिया व कुछ अन्य जीवों में गुणसूत्र से अलग जेनेटिक सामग्री वृत्ताकार अणुओं के रूप में पाई जाती है, जिन्हें प्लास्मिड कहते हैं।

शोधकर्ताओं ने अपने प्रयोग के लिए *ई. कोलाई* के ऐसे स्ट्रेन्स को चुना था जो उत्परिवर्तनों के कारण कतिपय ज़रूरी वृद्धि कारक बनाने में अक्षम थे। इन दोनों स्ट्रेन्स को एक ऐसे माध्यम में रखा गया जिसमें बैक्टीरिया वृद्धि के कुछ विशिष्ट पोषक तत्व नहीं थे। यानी ये दोनों ही अलग-अलग पोषक तत्वों की कमी के कारण उस माध्यम में नहीं पनप सकते थे।

तर्क यह था कि यदि ये स्ट्रेन्स जेनेटिक पदार्थों का लेनदेन न करें, तो दोनों ही पनप नहीं पाएँगे। लेकिन यदि जेनेटिक पदार्थ का लेनदेन हो जाता है तो दोनों स्ट्रेन्स में से कुछ बैक्टीरिया तो पनपेंगे। इस माध्यम को बैक्टीरिया वृद्धि के लिए सही तापमान वगैरह देकर कुछ समय बाद देखा गया कि इस अभावग्रस्त माध्यम में भी बैक्टीरिया की कुछ कॉलोनियाँ तो विकसित हो गईं। यानी कुछ बैक्टीरिया ने दूसरे स्ट्रेन से जेनेटिक सामग्री प्राप्त कर ली थी। यानी जेनेटिक पुनर्संयोजन हुआ था।

लेकिन इस प्रयोग से यह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि क्या इस तरह के लेनदेन के लिए बैक्टीरिया का

सम्पर्क में आना ज़रूरी है। वह प्रमाण बर्नार्ड डेविस ने एक सुन्दर प्रयोग के माध्यम से उपलब्ध कराया। बर्नार्ड डेविस का वह प्रयोग यू-ट्यूब प्रयोग के नाम से मशहूर है।

उन्होंने एक U आकार की नली ली जिसमें आधार पर एक फिल्टर लगा था। फिल्टर ऐसा था कि उसमें से माध्यम के पदार्थ तो आ-जा सकते थे लेकिन बैक्टीरिया की कोशिकाएँ नहीं। दोनों तरफ की नलियों में वृद्धि माध्यम भर दिया गया और दोनों तरफ अलग-अलग स्ट्रेन के बैक्टीरिया (जिनकी पोषक तत्वों की ज़रूरतें अलग-अलग थीं) डाले गए। एक पम्प की मदद से नली के एक हिस्से से दूसरे में लगातार पोषक माध्यम की आवाजाही चलती रही।

कुछ समय बाद जब इन बैक्टीरिया को एक तश्तरी में डाला गया जिसमें वह अभावग्रस्त पोषक माध्यम था तो एक भी कॉलोनी विकसित नहीं हुई। यानी जेनेटिक लेनदेन नहीं हुआ था। इस प्रयोग के आधार पर डेविस यह दिखा पाए कि जेनेटिक लेनदेन के लिए बैक्टीरिया कोशिकाओं का सीधे सम्पर्क ज़रूरी है।

इस खोज का बैक्टीरिया जेनेटिक्स में तो खासा असर रहा ही, परन्तु साथ ही इसने आगे चलकर क्षैतिज जेनेटिक स्थानान्तरण को समझने का रास्ता खोला। यानी बैक्टीरिया आपस में जेनेटिक सूचना का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि जेनेटिक सूचनाओं में फेरबदल मात्र लैंगिक प्रजनन या उत्परिवर्तनों के द्वारा नहीं होता।

लेडरबर्ग ने *ई. कोलाई* पर प्रयोगों के आधार पर बैक्टीरिया के बीच जेनेटिक हस्तान्तरण की एक नवीन विधि की खोज भी की थी, जो बैक्टीरियोफेज के मार्फत होती है। इसे उन्होंने ट्रांसडक्शन की संज्ञा दी थी। 1958 में लेडरबर्ग, जॉर्ज बीडल और ई. टेटम को संयुक्त रूप से नोबेल से सम्मानित किया गया था। लेडरबर्ग को यह पुरस्कार बैक्टीरिया में जेनेटिक सामग्री के संगठन तथा पुनर्संयोजन सम्बन्धी खोज के लिए दिया गया, जो *ई. कोलाई* पर हुए प्रयोगों से सम्भव हुई थीं।

ट्रांसडक्शन

दरअसल, बैक्टीरिया में जेनेटिक फेरबदल की दो विधियाँ तो ज्ञात थीं – एक थी उत्परिवर्तन यानी स्वयं बैक्टीरिया की जेनेटिक संरचना में परिवर्तन और दूसरी थी संयुग्मन। लेडरबर्ग और ज़िंडर ने एक तीसरी विधि की खोज की थी – साल्मोनेला नामक बैक्टीरिया के एक प्रतिरोधी स्ट्रेन के साथ प्रयोग करके।

वे यह देखना चाहते थे कि क्या उनके प्रयोग वास्तव में जेनेटिक पुनर्संयोजन को दर्शाते हैं। उन्होंने एक U आकार की नली लेकर उसके निचले मोड़ पर एक अत्यन्त महीन काँच का फिल्टर फिट कर दिया। इसमें उन्होंने एक माध्यम भर दिया

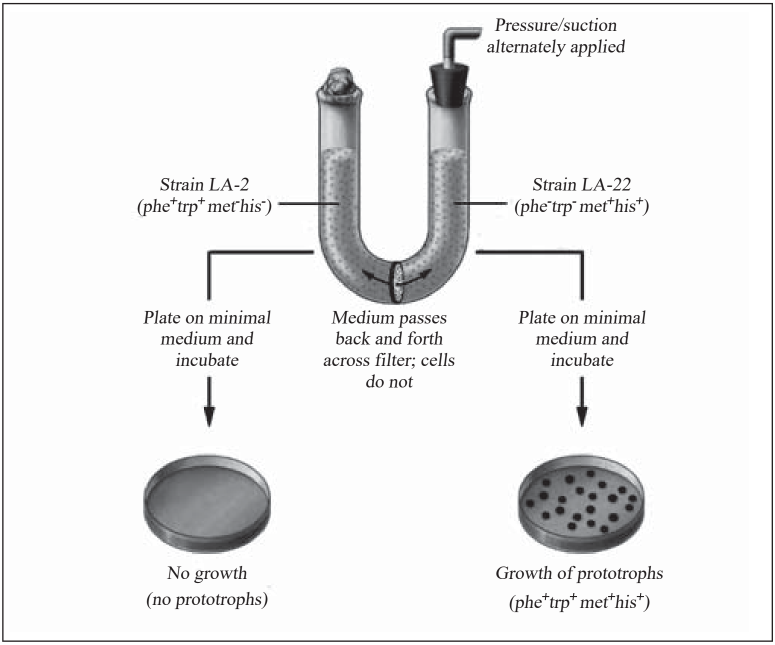

चित्र-5: लेडरबर्ग-ज़िंडर प्रयोग। आनुवंशिक परिवर्तनशीलता का स्थानान्तरण - ट्रांसडक्शन।

जिसमें उनके द्वारा चुने गए साल्मोनेला के उत्परिवर्तित रूपों के लिए ज़रूरी पोषक तत्व नहीं थे।

फिर उन्होंने एक-एक उत्परिवर्ती स्ट्रेन को नली की दोनों भुजाओं में डाल दिया और माध्यम को एक पम्प की मदद से दोनों तरफ बहाते रहे। उम्मीद थी कि कोई पुनर्संयोजन नहीं होगा क्योंकि बर्नार्ड डेविस ऐसे ही एक प्रयोग में दर्शा चुके थे कि पुनर्संयोजन के लिए बैक्टीरिया कोशिकाओं के बीच सीधे सम्पर्क ज़रूरी है।

लेकिन आश्चर्जनक रूप से, कई बैक्टीरिया पनपे और संख्या-वृद्धि भी करते दिखे। यानी पुनर्संयोजन हुआ था। और इसने दोनों उत्परिवर्तियों को अपनी-अपनी पोषण की कमी की भरपाई करने में मदद की थी।

इसका मतलब था कि ऐसा कोई एजेंट था जो उस महीन फिल्टर में से आ-जा सकता था। जब उन्होंने उस एजेंट का शुद्धिकरण किया तो पाया कि वह न तो शुद्ध डीएनए से बना था और न ही आरएनए क्योंकि इन्हें तोड़ने वाले एंज़ाइम का उस पर कोई असर नहीं हुआ। दरअसल, यह एक बैक्टीरियोफेज निकला।

हुआ यह था कि लेडरबर्ग और ज़िंडर ने जिस साल्मोनेला का उपयोग किया था, वह काफी पहले एक लायसोजेनिक वायरस से संक्रमित था, जिसका डीएनए साल्मोनेला के जीनोम में जुड़ गया था और बैक्टीरिया के प्रजनन के साथ इस वायरस डीएनए की प्रतिलिपियाँ भी आगे बढ़ती गई थीं। प्रयोग के दौरान वह वायरस डीएनए से अलग हो गया, खुद की प्रतिलिपियाँ बनाने लगा और फिर बैक्टीरिया कोशिका फट गई और वायरस बाहर रखे माध्यम में जा पहुँचा। बैक्टीरिया जीनोम से अलग होने से पहले वह वायरस अपने साथ बैक्टीरिया के डीएनए के कुछ खण्ड भी लेता गया। फिल्टर वायरसों की आवाजाही के लिए उपयुक्त था। तो वायरसों के साथ बैक्टीरिया के जीन्स भी नली की दूसरी भुजा में पहुँचे, वहाँ उन्होंने उस भुजा के बैक्टीरिया को संक्रमित किया और उनके जीनोम्स में फिट हो गए। लेडरबर्ग और ज़िंडर का निष्कर्ष था कि नए-नए संक्रमित बैक्टीरिया में वे जीन पहुँच गए जो उनके पोषण सम्बन्धी अभाव की भरपाई करते थे।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना लाज़मी है कि वायरस किसी बैक्टीरिया को संक्रमित करने के बाद दो रास्ते अपना सकता है - लायसोजेनिक और लायसिस। लायसोजेनिक मार्ग में होता यह है कि वायरस अपना पूरा जीनोम बैक्टीरिया के जीनोम में जोड़कर सुप्त हो जाता है। फिर बैक्टीरिया की कोशिका के विभाजन के साथ वायरस के जीनोम की भी प्रतिलिपि बनती रहती है। मौका आने पर वायरस का जीनोम अलग होकर स्वयं की प्रतिलिपियाँ बनाने लगता है (यानी नए वायरस बनने लगते हैं) और बैक्टीरिया कोशिका को फोड़कर बाहर निकल आते हैं। लायसिस की प्रक्रिया में वायरस संक्रमण के तत्काल बाद अपनी प्रतिलिपियाँ बनाने लगता है और कोशिका के विनाश का कारण बन जाता है। कतिपय तनाव की परिस्थितियों में (जैसे पराबैंगनी विकिरण) वायरस का जीनोम मेज़बान के गुणसूत्र से अलग होकर अपनी प्रतिलिपियाँ बनाने लगता है और मेज़बान कोशिका को फोड़कर सारे वायरस बाहर निकल जाते हैं।

लायसोजेनी की क्रियाविधि का खुलासा आंद्रे ल्वॉफ ने *ई. कोलाई* पर

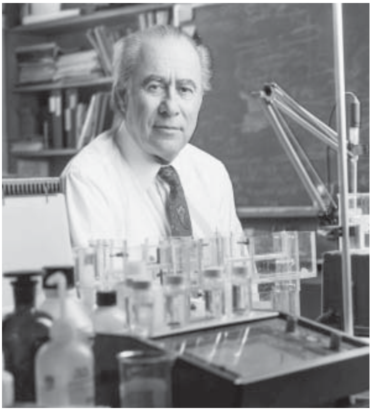

चित्र-6: *नॉर्टन ज़िंडर*

काम करते हुए किया था। यह सही है कि ट्रांसडक्शन प्रक्रिया की खोज साल्मोनेला में हुई थी लेकिन इसे मनचाहा जीन हस्तान्तरण की एक विधि के रूप में *ई. कोलाई* में ही विकसित किया गया।

ट्रांसडक्शन की खोज और आगे का विकास बुनियादी महत्व का साबित हुआ। एक तो इससे स्पष्ट हुआ कि प्रोकेरियोट्स (जिनमें एक सुपरिभाषित केन्द्रक नहीं होता) में ज़रूरी नहीं कि दो जीवों की पूरी-की-पूरी जेनेटिक सामग्री का पुनर्संयोजन हो। उनमें आपस में डीएनए के छोटे-छोटे खण्ड का लेनदेन भी होता है। दूसरी ओर केन्द्रक युक्त (यूकेरियोट्स) कोशिकाओं में पूरी-की-पूरी जेनेटिक सामग्री का मिलन ज़रूरी होता है। प्रोकेरियोट्स और यूकेरियोट्स के बीच विभेद का यह मापदण्ड आणविक जीव विज्ञान की एक बुनियादी अवधारणा है।

बहरहाल, ट्रांसडक्शन ने चिकित्सा और जैव-टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में भी भारी योगदान दिया है। इसने बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक प्रतिरोध के त्वरित प्रसार की एक नई प्रक्रिया का खुलासा किया।

ट्रांसडक्शन जेनेटिक इंजीनियरिंग में भी महत्वपूर्ण साबित हुआ है। इसकी मदद से जीन्स का हस्तान्तरण करवाया जा सकता है। सन् 1970 के दशक में वैज्ञानिक डीएनए के मनचाहे खण्डों को बैक्टीरियोफेज में जोड़कर उसे किसी अन्य बैक्टीरिया में पहुँचाना सीख गए थे। फिर सन् 1990 के दशक में किसी वायरस-वाही की मदद से किसी गड़बड़ जीन के स्थान पर स्वस्थ जीन पहुँचाना जीन थेरपी का आधार बना।

ट्रांसडक्शन ने *ई. कोलाई* के जीनोम में फेरबदल करने की तकनीक उपलब्ध कराई। लिहाज़ा, *ई. कोलाई* के जीनोम में परिवर्तन करके उससे मनचाहे रसायन भी बनवाए जा सकते हैं।

बैक्टीरिया में जेनेटिक पुनर्संयोजन की एक विधि और होती है - जेनेटिक रूपान्तरण (transformation) जिसका ज़िक्र इस लेख में नहीं किया जा रहा चूँकि उसकी खोज में *ई. कोलाई* की भूमिका नहीं थी।

एक महत्वपूर्ण तकनीक

ई. कोलाई पर काम करते हुए लेडरबर्ग और एस्थर ने रेप्लिका प्लेटिंग नामक एक तकनीक का विकास किया जो बैक्टीरिया की छँटाई की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई। इसका उपयोग करके यह पता लगाया जा सकता था कि कौन-से बैक्टीरिया एंटीबायोटिक के या संक्रामक वायरस के प्रतिरोधी हैं। इसमें किया यह जाता है कि एक तश्तरी (मास्टर प्लेट) में बैक्टीरिया कॉलोनियों को पनपने दिया जाता है। फिर इस प्लेट से इन बैक्टीरिया कॉलोनी की छाप को एक अन्य

बैक्टीरियाविहीन प्लेट पर आरोपित कर दिया जाता है। यह मास्टर प्लेट की प्रतिकृति होती है। इसके बाद एंटीबायोटिक या संक्रामक वायरस को उस दूसरी प्लेट पर छिड़का जाता है। तब सिर्फ वही कॉलोनी विकसित होंगी जो प्रतिरोधी हैं। इस तरह से मास्टर प्लेट पर प्रतिरोधी कॉलोनियों की स्थिति पता चल जाती है।

रेप्लिका प्लेटिंग के प्रयोगों से भी स्पष्ट हुआ कि बैक्टीरिया में प्रतिरोध उत्परिवर्तनों का परिणाम है, न कि चयनकारी वातावरण के प्रति किसी अनुकूलन का।

जीन नियमन

जीन नियमन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोशिकाएँ नियंत्रित करती हैं कि कौन-से जीन व्यक्त किए जाएँ और किस हद तक। विशिष्ट जीन उत्पादों से कोशिकीय विभेदन, विकास और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति प्रतिक्रिया निर्धारित होती है। यानी यह प्रक्रिया किसी भी जीव के लिए निहायत महत्वपूर्ण है।

जीन नियमन का अध्ययन पेरिस के पाश्चर इंस्टीट्यूट में शुरू हुआ था। जीन नियमन के विकास में तीन लोगों का योगदान प्रमुख रहा - आंद्रे ल्वॉफ, जेकेस मोनोड और फ्रांस्वा जेकब। और ये तीनों ही नाज़ी अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष में गहराई से जुड़े थे।

सन् 1941 में जैकेस मोनोड ने *ई. कोलाई* तथा *बैसिलस सब्टिलिस* पर काम करते हुए डाइऑक्सी की खोज की थी। डाइऑक्सिक प्रयोग एक ऐसा प्रयोग है जिसमें एक जीव को दो अलग-अलग शर्कराओं (जैसे ग्लूकोज़ और लैक्टोज़) के मिश्रण वाले माध्यम में पनपाया जाता है। इस प्रयोग में, जीव पहले एक शर्करा (प्राय: ग्लूकोज़) का उपयोग करता है। इस दौरान, जीव तेज़ी-से बढ़ता है। जब ग्लूकोज़ समाप्त हो जाता है, तो जीव को लैक्टोज़ का उपयोग करने के लिए अनुकूलित होने में कुछ समय लगता है। इस दौरान, जीव की वृद्धि धीमी हो जाती है। इसके बाद जीव लैक्टोज़ का उपयोग करना शुरू कर देता है। वृद्धि का यह दूसरा चरण पहले चरण की तुलना में धीमा होता है।

यह प्रयोग जीवों द्वारा शर्करा के चयापचय और एंज़ाइम संश्लेषण की प्रक्रिया को समझने में मदद करता है। और जीन नियमन के अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण है। यह प्रयोग विभिन्न प्रकार के जीवों में चयापचय अनुकूलन का अध्ययन करने के लिए भी उपयोगी है। मोनोड ने इसे एंज़ाइम अवरोध या एंज़ाइमों के दमन का परिणाम बताया। मोनोड की प्रारम्भिक व्याख्या इस विचार पर केन्द्रित थी कि लैक्टोज़ चयापचय के लिए आवश्यक एंज़ाइम ग्लूकोज़ की उपस्थिति में बाधित कर दिए जाते हैं, यानी दबा दिए जाते हैं।

मोनोड ने आगे बढ़कर *ई. कोलाई* में लैक्टोज़ तंत्र का जेनेटिक विश्लेषण किया। उन्होंने स्थापित किया कि *ई. कोलाई* में बीटा-गैलेक्टोसिडेज़ के उत्पादन को विशिष्ट उद्दीपनों पर शुरू करवाया जाता है। ऐसा एक उद्दीपन होता है, लैक्टोज़ की उपस्थिति।

जीन नियमन का मॉडल

जेकब और मोनोड ने *ई. कोलाई* में जीन नियमन की प्रक्रिया का गहन अध्ययन किया। इसी दौरान उन्होंने संदेशवाहक यानी मेसेंजर आरएनए (एम-आरएनए) की खोज की थी। एम-आरएनए ही डीएनए पर उपस्थित जेनेटिक सूचना को राइबोसोम तक ले जाने का काम करता है। इसके बाद उन्होंने जीन नियमन का एक मॉडल प्रस्तावित किया। इस मॉडल के अनुसार, किसी एक प्रक्रिया के लिए ज़िम्मेदार जीन्स ऑपेरॉन नामक समूह में एकीकृत होते हैं। यह भी कहा गया था कि एक ही एम-आरएनए एकाधिक सम्बन्धित प्रोटीन्स का वाहक हो सकता है। इस मॉडल से यह समझने में मदद मिली कि कोशिका में विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में प्रोटीन उत्पादन का समन्वय कैसे किया जाता है। जेकब और मोनोड ने *ई. कोलाई* में लैक ऑपेरॉन (lac operon) के उदाहरण से इसे स्पष्ट किया था।

यह ऑपेरॉन *ई. कोलाई* में लैक्टोज़ नामक शर्करा के पाचन के लिए ज़रूरी एंज़ाइम के निर्माण का नियमन करता है। जेकब और मोनोड यह दर्शाने में सफल रहे थे कि इस ऑपेरॉन की अभिव्यक्ति एक दमनकारी (repressor) जीन से संचालित होती है जो लैक्टोज़ की अनुपस्थिति में डीएनए के एक हिस्से से जुड़ जाता है और उसकी अभिव्यक्ति को बाधित कर देता है। जब लैक्टोज़ उपस्थित होता है तो वह जाकर इस दमनकारी जीन से जुड़कर उसकी क्रिया को रोक देता है और डीएनए से एम-आरएनए का निर्माण (प्रतिलेखन) शुरू हो जाता है। इस मॉडल ने न सिर्फ एम-आरएनए की उपस्थिति प्रमाणित की बल्कि यह जटिल जीवों में जीन नियमन को समझने का मॉडल बना।

इस पूरी प्रक्रिया को कदम-दर-कदम समझने और एक सम्पूर्ण चित्र तैयार करने में कई वैज्ञानिकों और कई सूक्ष्म जीवों की भूमिका रही है, जिनमें *ई. कोलाई* ने भी हाथ बँटाया। और जीन नियमन की प्रक्रिया का खुलासा करने के लिए जेकब और मोनोड (साथ में आंद्रे ल्वॉफ) को 1965 में नोबेल से नवाज़ा गया।

डीएनए से प्रोटीन का सफर

कई वैज्ञानिकों के शोध कार्य से यह तो स्पष्ट हो गया था कि डीएनए में न्यूक्लियोटाइड के क्रम से तय होता है कि कौन-से प्रोटीन बनेंगे।

बैक्टीरिया में लैंगिक प्रजनन

एफ. जेकब और ई. वोलमैन ने बैक्टीरिया में लैंगिक प्रक्रिया का खुलासा किया और बैक्टीरिया के गुणसूत्र की वृत्ताकार बनावट को उजागर किया था। इसके लिए उन्होंने एक अन्य प्रयोगशाला में पृथक किए गए *ई. कोलाई* के एक स्ट्रेन की मदद ली थी।

लेकिन यह प्रक्रिया कैसे काम करती है, इसे लेकर कई सारे विचार थे।

एक विचार यह था कि डीएनए के अणु पर ही प्रोटीन का संश्लेषण होता है (जॉर्ज गैमोव)। दूसरी ओर, एक विचार यह भी था कि प्रोटीन का संश्लेषण डीएनए के अणु पर नहीं बल्कि कोशिका द्रव्य में होता है और इसके लिए आरएनए की ज़रूरत होती है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं था कि यह प्रक्रिया होती कैसे है और इसमें आरएनए की क्या भूमिका है।

फिर सन् 1940 के दशक में ज़्यां ब्रेश और टॉरब्योर्न कैस्परसन ने *ई. कोलाई* व अन्य जीवों पर काम करके बताया कि आरएनए ज़्यादातर कोशिका द्रव्य में पाया जाता है और जिस कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण तेज़ गति से हो रहा हो, उसमें आरएनए की मात्रा भी अधिक होती है। इससे लगा कि प्रोटीन संश्लेषण और आरएनए के बीच कुछ सम्बन्ध ज़रूर है।

आरएनए की भूमिका की पहली परिकल्पना आंद्रे बोइविन के 1947 के शोध पत्र में सामने आई थी। यह शोध पत्र फ्रेंच भाषा में लिखा गया था लेकिन अँग्रेज़ी में लिखे गए सम्पादकीय में पर्चे का सार इन शब्दों में व्यक्त किया गया था: ‘डीएनए नामक विशाल अणु एक अन्य विशाल अणु आरएनए के निर्माण का संचालन करता है और ये आरएनए अणु कोशिका द्रव्य में प्रोटीन निर्माण का नियंत्रण करते हैं’।

इसके बाद 1950 के दशक में वैज्ञानिकों ने *ई. कोलाई* के कोशिका द्रव्य का विश्लेषण करके आरएनए की प्रचुर संरचनाएँ खोजीं जिन्हें उस समय माइक्रोसोमल पार्टिकल कहा गया। आगे चलकर इनका नाम राइबोसोम हुआ और यह पहचाना गया कि राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण का प्रमुख पात्र है। राइबोसोम पर उपस्थित आरएनए के आधार पर यह विचार बना कि राइबोसोम ही प्रोटीन संश्लेषण का स्थल है।

धीरे-धीरे डीएनए से प्रोटीन तक की पूरी प्रक्रिया स्पष्ट हुई। डीएनए से संदेशवाहक आरएनए (mRNA) बनता है जो जाकर राइबोसोम से जुड़ जाता है। यहाँ छोटे-छोटे आरएनए अणु (ट्रांसफर आरएनए - tRNA) बनते हैं जो कोशिका द्रव्य में से एक-एक

अमीनो अम्ल को राइबोसोम तक लाते हैं जिन्हें जोड़कर प्रोटीन बनता है।

इन खोजों ने न सिर्फ जीव विज्ञान में समझ को आगे बढ़ाया बल्कि इसने आजकल हो रहे जीव वैज्ञानिक नवाचारों का मार्ग भी प्रशस्त किया। एम-आरएनए की खोज ने चिकित्सा के क्षेत्र में नए विचारों को जन्म दिया।

रीकॉम्बिनेंट टेक्नॉलॉजी

ई. कोलाई तथा उसे संक्रमित करने वाले वायरस रिकॉम्बिनेंट डीएनए टेक्नॉलॉजी के विकास में प्रमुख रहे हैं। यह टेक्नॉलॉजी डब्ल्यू. आर्बर द्वारा रेस्ट्रिक्शन मॉडिफिकेशन तंत्र की खोज पर आधारित थी।

रेस्ट्रिक्शन मॉडिफिकेशन तंत्र की खोज भी *ई. कोलाई* और बैक्टीरियोफेज पर किए गए प्रयोगों से ही सम्भव हुई थी। सबसे पहले तो यह देखा गया कि कुछ फेज किसी एक बैक्टीरिया स्ट्रेन पर विकसित होने के लिए अनुकूलित होते हैं, लेकिन किसी अन्य स्ट्रेन पर नहीं। इसका मतलब है कि बैक्टीरिया में परदेशी डीएनए के विरुद्ध कुछ प्रतिरोध प्रक्रिया मौजूद होती है।

इस अवलोकन ने स्टुअर्ट लिन और वर्नर आर्बर को *ई. कोलाई* में से दो तरह के एंज़ाइम पृथक करने को प्रेरित किया - रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम तथा मॉडिफिकेशन एंज़ाइम। आगे चलकर हैमिल्टन स्मिथ ने एक बैक्टीरिया *हीमोफिलस इंफ्लुएंज़े* में से एक रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम शुद्ध रूप में प्राप्त भी किया। लिन और आर्बर ने एक मॉडिफिकेशन एंज़ाइम (मिथायलेज़) प्राप्त किया जो डीएनए पर सुरक्षात्मक मिथाइल समूह जोड़ता है और एक रेस्ट्रिक्शन एंज़ाइम मिथाइल समूह रहित सारे डीएनए को तोड़ देता है। यानी स्वयं बैक्टीरिया का डीएनए मिथाइल समूह युक्त होने के चलते बच जाएगा जबकि बाहर से आया डीएनए नष्ट कर दिया जाएगा।

इस खोज का महत्व स्वत: स्पष्ट है - इसने हमें डीएनए के साथ खिलवाड़ से एक महत्वपूर्ण औज़ार उपलब्ध कराया है।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

लेख में उल्लिखित वैज्ञानिकों के नाम यहाँ अँग्रेज़ी में दिए गए हैं, ताकि आप उनके बारे में अन्य जानकारी आसानी-से खोज सकें।

Theodor Escherich, Rudolf Massini, M. Delbrück, Alfred D. Hershey, M. Chase, Seymour Benzer, J. Lederberg, Norton Zinder, E. Tatum, A. Lwoff, F. Jacob, E. Wollman, J. Monod, Max Delbrück, Salvador E. Luria, Martha Chase, Jean Brachet, Torbjörn Caspersson, André Boivin, Werner Arbe, Stuart Linn

नील का तोहफा

आमोद कारखानीस

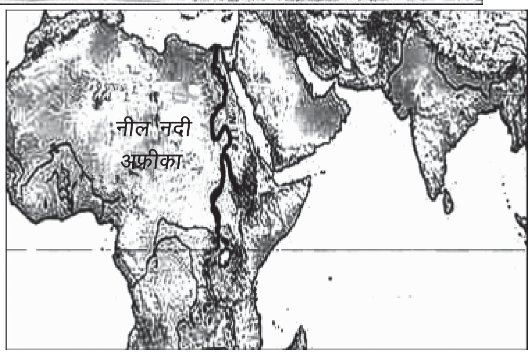

नील दुनिया की सबसे लम्बी बहने वाली नदी है। यह लगभग साढ़े छह हज़ार किलोमीटर बहती है। इसका उद्गम अफ्रीका के केन्या देश में होता है और उत्तर की ओर बहती हुई, यह भूमध्य सागर में जाकर मिलती है। नील नदी-तंत्र (रिवर सिस्टम) अपने आप में काफी विशाल है। अफ्रीकी पहाड़ों का पानी नील और इसकी सहायक नदियों के माध्यम से आखिरकार भूमध्य सागर तक पहुँचता है। नील नदी पर फिलहाल अस्वान बाँध बनाया गया है। इस बाँध के पीछे जितना पानी इकट्ठा हुआ है, उसे देखकर यही महसूस होता है कि मानो कोई छोटा-मोटा समुन्दर देख रहे हों।

वैसे देखा जाए, तो आजकल हम हर जगह बड़े-बड़े बाँध और गगनचुम्बी इमारतें देखते हैं। ज़मीन पर खड़े होकर दिखाई देने वाले ये सभी भव्य

निर्माण यदि कोई अन्तरिक्ष से देखे, तो उनमें से अधिकांश दिखाई भी नहीं देंगे। लेकिन मनुष्य द्वारा निर्मित कुछ रचनाएँ ऐसी हैं, जो अन्तरिक्ष से भी स्पष्ट दिखाई देती हैं। उनमें से एक अस्वान बाँध के कारण बनी विशाल झील है। इससे नील नदी की विराटता का अनुमान लगाया जा सकता है।

नील: आपदा से अवसर

अफ्रीका में वर्षा ऋतु के दौरान तीन-चार महीनों तक जमकर बारिश होती है। स्वाभाविक है कि इस कारण नील नदी में आने वाली बाढ़ भी अत्यन्त प्रचण्ड होती होगी। बाढ़ का यह पानी अन्ततः भूमध्य सागर में जाकर मिलता है। वैसे तो इजिप्त का अधिकांश भाग रेगिस्तानी है, लेकिन नील नदी की बाढ़ और उसके उपहार स्वरूप मिलने वाली उपजाऊ मिट्टी ने इस क्षेत्र को अत्यन्त उपजाऊ बना दिया है। रहने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होने के कारण यहाँ एक विकसित मानव सभ्यता का उदय हो सका। हर वर्ष आने वाली बाढ़ को ध्यान में रखते हुए लोगों ने लम्बी नहरें बनाकर पानी को दूर-दूर तक पहुँचाया और खेती-योग्य भूमि का विस्तार किया। यही कारण है कि आसमान की ऊँचाइयों से देखने पर सूखे रेगिस्तान के बीच हरियाली से भरा भूभाग दिखाई दे जाता है।

नील नदी से नहरें निकालने का काम इन्सान ने प्राचीन काल से ही शुरू कर दिया था। उस समय आज की तरह सीमेंट और कंक्रीट का उपयोग नहीं होता था, इसलिए ज़मीन को खोदकर नालीनुमा मार्ग बनाए जाते थे, जिनके माध्यम से पानी को दूर-दूर तक पहुँचाया जाता था। जगह-जगह तालाब बनाकर पानी को इकट्ठा भी किया जाता था। हर वर्ष आने वाली बाढ़ के समय इन नहरों द्वारा पानी को दूर-दूर तक ले जाया जाता था। बाढ़ समाप्त होने के बाद नहरों और तालाबों में जमा गाद को हटाने तथा उनकी मरम्मत का कार्य किया जाता था।

नहरों और तालाबों का रखरखाव एक बहुत बड़ा और कठिन काम था, लेकिन धीरे-धीरे यह इजिप्त के लोगों की जीवनशैली का हिस्सा बन गया। जिस प्रकार हमारे यहाँ महाकाव्य हैं, उसी प्रकार इजिप्त के लोगों के भी अपने महाकाव्य हैं। उनके एक महाकाव्य में कल्पना की गई है कि प्रारम्भ में यह सारा रखरखाव का कार्य कुछ देवताओं को सौंपा गया था। परन्तु लगातार यह काम करते-करते वे ऊब गए और उन्होंने अपने प्रमुख देवता से इसकी शिकायत की। तब प्रमुख देवता ने समाधान स्वरूप मनुष्य की रचना की और यह कार्य उसे सौंप दिया। मनुष्य की सहायता के लिए बैल, घोड़े आदि पशुओं की भी रचना की गई।

नील नदी का प्रबंधन व गणनाएँ

मनुष्य ने बुद्धि और कौशल के बल पर अनेक सुधार किए और अपने कार्यों को आसान बनाया। अपने जीवन को अधिक समृद्ध और सुविधाजनक बनाने के लिए उसने प्रकृति की बाधाओं को पार करने का प्रयास किया। साथ ही, उसने यह भी सोचा कि प्रकृति द्वारा उपलब्ध विभिन्न संसाधनों का उपयोग अपने हित और विकास के लिए किस प्रकार किया जा सकता है।

इजिप्त के रेगिस्तानी इलाकों में बहुत कम बारिश होती थी। इसलिए वहाँ पानी की उपलब्धता पूरी तरह नील नदी पर निर्भर थी। नील नदी में हर साल बाढ़ आती थी, इसलिए बाढ़ आने से पहले नहरों एवं तालाबों की सफाई और गाद हटाने तथा मरम्मत का काम पूरा कर लिया जाता था। अफ्रीका में भी हमारे देश की तरह जून-जुलाई के आसपास वर्षा शुरू होती है। मध्य अफ्रीका में हुई बारिश का पानी नील नदी के माध्यम से इजिप्त तक पहुँचने में लगभग तीन महीने लग जाते थे। बाढ़ का पानी कब तक पहुँचेगा, इसका अनुमान लगाने के लिए इजिप्त के लोगों ने कुछ संकेतकों की पहचान कर रखी थी। उदाहरण के लिए, जब पूर्वी क्षितिज पर सुबह-सुबह व्याघ्र तारा मण्डल (सीरियस कॉन्स्टलेशन) दिखाई देने लगता था, तो यह माना जाता था कि बाढ़ आने वाली है।

बाढ़ आने से पहले वे तालाबों की मरम्मत का काम पूरा कर लेते थे और 'थोथ' (Thoth) नामक आनन्द भरा उत्सव मनाते थे।

अब तक आप समझ चुके होंगे कि इन सभी कार्यों के लिए सामान्य गणित, खगोल विज्ञान और भौतिकी जैसे विषयों का ज्ञान आवश्यक था। यही कारण था कि प्राचीन इजिप्त में गणित जानने वाले व्यक्ति को समाज में विशेष सम्मान मिलता था, क्योंकि

इजिप्त के सर्वेक्षक। यह चित्र दी गई लिंक के मूल चित्र के आधार पर पुनर्निर्मित है।

https://old.maa.org/press/periodicals/convergence/mathematical-treasure-tombs-of-menna-and-wepemnefret

इजिप्त की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था काफी हद तक इसी ज्ञान पर निर्भर थी। नील नदी के पानी का प्रबंधन कोई आसान काम नहीं था। तालाब निर्माण के लिए पहले नाप-जोख करनी पड़ती थी – तालाब कहाँ बनेगा, कितना गहरा होगा, उसका आकार कैसा होगा और किनारों का ढाल कितना रखा जाएगा, यह सब तय करना होता था। इसके बाद ईंटों से चिनाई का काम किया जाता था। क्षेत्रफल और आयतन की गणना के लिए भी गणित का ज्ञान आवश्यक था। इन्हीं कारणों से इजिप्त में भूमि की नपाई और माप-जोख की कला में खासी प्रगति दर्ज की गई।

प्राचीन इजिप्त में इंजीनियर या सर्वेयर बनना आसान नहीं था। इसके लिए कठिनतम परीक्षाएँ देनी पड़ती थीं। उस समय के बारे में जानकारी हमें शिलालेखों और पकाई हुई मिट्टी की तख्तियों (tablets) पर लिखे गए टेक्स्ट से प्राप्त होती है।

इंजीनियर की चयन प्रक्रिया

अब थोड़ी कल्पनाशीलता का इस्तेमाल करते हुए यह समझने की कोशिश करेंगे कि किसी इंजीनियर का चयन करते समय किन योग्यताओं को परखा जाता था।

एक राजा ने निर्णय लिया कि वह एक नए महल का निर्माण करवाएगा। राजमहल कोई साधारण चार दीवारों वाली इमारत नहीं होने वाली थी। उसमें भव्यता, सुन्दर कलाकारी वाले विशाल स्तम्भ, बड़े-बड़े कक्ष और विशाल सभागृह बनाए जाने थे। हर कक्ष की ज़रूरत फर्क होने के कारण, उसका निर्माण भी विशेष योजना और विशेषज्ञों की देखरेख में किया जाना था। इंजीनियर इस कार्य में मुख्य विशेषज्ञ के सहायक के रूप में काम करता था। इस महत्वपूर्ण पद पर नियुक्ति के लिए अनेक इंजीनियर इंटरव्यू देने आए हुए थे।

फर्ज़ कीजिए कि इंटरव्यू लेने वाले सभी अधिकारी एक ओर बैठे हैं। तभी नौकरी का इच्छुक इंजीनियर भीतर प्रवेश करता है और उनसे बातचीत शुरू होती है।

इंजीनियर सभी का अभिवादन करता है और राजमहल के निर्माण कार्य में अपनी सेवाएँ देने की ख्वाहिश सबके सामने रखता है।

सवाल – आप किसके विद्यार्थी हैं?

जवाब – मैं नील नदी के उत्तरी तट पर स्थित पाठशाला का विद्यार्थी हूँ।

सवाल – राजमहल के हॉल की दीवार 76 क्यूबिट लम्बी है। (क्यूबिट लम्बाई मापने की एक इकाई थी। सामान्यतः 1 क्यूबिट को एक हाथ की लम्बाई के बराबर माना जाता था।) इस दीवार को दो पुरुषों की ऊँचाई तक बनाना है। इसके निर्माण के लिए कितनी ईंटों की ज़रूरत होगी?

इसी के साथ एक और सवाल पूछा जाता है - यदि इस दीवार को ऊपर की ओर छत बनाने के उद्देश्य से ढलानदार बनाना हो, तो इसमें कितनी अतिरिक्त ईंटें लगेंगी?

फिर एक और सवाल दाग दिया जाता है – प्रमुख आमात्य को पूजा-पाठ के लिए एक छोटा पिरामिड बनवाना है, जिसका चबूतरा 20 क्यूबिट चौड़ा और 8 क्यूबिट ऊँचा होगा। इसकी ऊँचाई एक पुरुष की ऊँचाई के बराबर होगी, और यदि उस ऊँचाई के छह भाग किए जाएँ तो उनमें से एक भाग जितनी अतिरिक्त होगी। क्या तुम बता सकते हो कि इस पिरामिड के निर्माण के लिए कितनी मिट्टी की ज़रूरत पड़ेगी?

इस प्रकार के सवालों का सही उत्तर देने वाले ही आगे चलकर इंजीनियर बनते थे। दीवार की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के आधार पर उसका क्षेत्रफल निकालना, त्रिभुज का क्षेत्रफल ज्ञात करना और पिरामिड का आयतन निकालने जैसे गणितीय सूत्रों का ज्ञान इंजीनियर के लिए ज़रूरी माना जाता था।

इस विवरण को पढ़कर आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि प्राचीन इजिप्त में इंजीनियर बनने के लिए कितनी कठिन पढ़ाई और गहन ज्ञान की आवश्यकता होती थी।

यह सब पढ़ते हुए आपके मन में कई तरह के सवाल उठ रहे होंगे। मसलन, विद्यार्थी यह सारी शिक्षा कहाँ प्राप्त करते होंगे? इंटरव्यू में

पूछे जाने वाले सम्भावित प्रश्नों की तैयारी वे कैसे करते होंगे? क्या उस समय ऐसी चयन परीक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तकें, कुंजियाँ या मार्गदर्शिकाएँ उपलब्ध होती थीं?

पेपिरस पर गणित व व्यावहारिक ज्ञान

इजिप्त में पेपिरस नामक एक पौधा पाया जाता था। भारत में जिस प्रकार प्राचीन समय में लिखने के लिए भुर्जपत्र (भोजपत्र) का उपयोग किया जाता था, उसी प्रकार इजिप्त में पेपिरस से कागज़ तैयार किया जाता था और उस पर लेखन किया जाता था। जर्मनी के पुरातत्वविद् अलेक्ज़ेंडर रिंड को पेपिरस के कागज़ पर लिखी एक प्राचीन पुस्तक मिली थी। उस समय इजिप्त में जो लिपि प्रचलित थी, उसे पढ़ने में अब हम सफल हो गए हैं। इस पुस्तक में अनेक गणितीय सूत्र, और प्रश्न दिए गए हैं।

हालाँकि, इस पुस्तक के कई पन्ने फट चुके हैं और कुछ गायब भी हो गए हैं, फिर भी शेष बचे पन्नों में गणित के लगभग 90 उदाहरण और उनके उत्तर मिलते हैं। उस समय तक छापाखाने का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए किताबें हाथ से लिखी जाती थीं। ऐसे में यह कहना कठिन है कि हस्तलिखित पुस्तकें कितने लोगों तक पहुँच पाती होंगी। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय हस्तलिखित पुस्तकों की परम्परा विकसित हो चुकी थी और उनका काफी महत्व था। ऐसा इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि इस किताब की शुरुआत में लेखक अहमेज़ उल्लेख करते हैं कि यह पुस्तक सम्राट निमात्रे के शासनकाल में लिखी गई एक पुरानी पुस्तक का पुनर्लेखन है।

चूँकि इस किताब की खोज अलेक्ज़ेंडर रिंड ने की थी, इसलिए इसे *रिंड पेपिरस* के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार की कुछ अन्य प्राचीन किताबें मॉस्को और बर्लिन के संग्रहालयों में भी सुरक्षित रखी गई हैं। इन पुस्तकों के आधार पर उस दौर के इजिप्त में गणितीय ज्ञान का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

रिंड पेपिरस के शुरुआती कुछ पन्नों में भिन्न से सम्बन्धित सूत्र दिए गए हैं। इसके बाद भिन्नों पर आधारित कई इबारती उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे – इतना अनाज इतने लोगों में समान रूप से कैसे बाँटा जाए?

किताब के एक अन्य महत्वपूर्ण भाग में ईंटों की संरचना, घनाभ, प्रिज़्म आदि के क्षेत्रफल और आयतन से सम्बन्धित प्रश्न दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, किसी निश्चित क्यूबिट आकार की आयताकार संरचना में कितना अनाज समा सकता है? इसी तरह, वृत्त और समलम्ब चतुर्भुज के क्षेत्रफल से सम्बन्धित प्रश्न भी दिए गए हैं।

'रिंड पेपिरस' का एक पृष्ठ

इस प्रकार *रिंड पेपिरस* में गणित की विभिन्न शाखाओं से जुड़े अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

इस पुस्तक को केवल गणित की किताब मानकर देखना सही नहीं होगा। इसके माध्यम से उस समय के समाज में गणित के विकास और उसकी प्रगति की झलक भी मिलती है। इस किताब की एक विशेषता यह भी है कि इसमें दिए गए सभी प्रश्न व्यावहारिक जीवन से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए – किसी निर्माण कार्य के लिए कितनी ईंटों की आवश्यकता होगी, या किसी संरचना में कितना अनाज संग्रहित किया जा सकेगा आदि।

खेती-किसानी से सम्बन्धित सवालों के माध्यम से उस समय की कर-प्रणाली, उत्पादन क्षमता आदि के बारे में भी महत्वपूर्ण संकेत प्राप्त होते हैं।

इस किताब का अन्तिम भाग वर्ग समीकरण अथवा द्विघात समीकरण (Quadratic Equation) से सम्बन्धित है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन इजिप्त के लोगों को अपने दैनिक जीवन में ऐसे गणितीय ज्ञान की भी ज़रूरत पड़ती थी। हम देख पाते हैं कि इन सब व्यावहारिक ज़रूरतों की वजह से उन्होंने गणित में इतनी तरक्की की थी।

उनकी गणितीय उन्नति का एक उदाहरण वृत्त का क्षेत्रफल निकालने का उनका तरीका है। वृत्त का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए 'पाई (π)' के मान की आवश्यकता होती है। (वर्तमान समय में वृत्त का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र है $= \pi r^2$)

लेकिन उस समय इजिप्तवासियों के पास π की स्पष्ट अवधारणा नहीं थी। उनका गणित मुख्यतः व्यावहारिकता पर आधारित था। इसलिए उन्होंने वृत्त की परिधि और क्षेत्रफल का मोटा-मोटा अनुमान लगाने की विधियाँ विकसित कर ली थीं। भले ही उनके पास π का शुद्ध मान नहीं था, फिर भी वे गोलाकार अनाज-भण्डारों की दीवारों के निर्माण के लिए आवश्यक ईंटों की संख्या का अनुमान लगा लेते थे।

कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि इजिप्तवासी वृत्त का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए चक्राकार सर्पिल रस्सियों का उपयोग करते होंगे। सम्भवतः इसी के प्रतीक के रूप में उस समय की कई कलाकृतियों में सर्पिलाकार कुण्डली वाले साँपों का चित्रण मिलता है।

इजिप्त के निवासी केवल गणित के ज्ञाता ही नहीं थे, अपितु वे बेहतर दर्ज़े के इंजीनियर और भूमि-सर्वेक्षक भी थे। गणित का उपयोग करते हुए उन्होंने अपनी अनेक चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया। *रिंड पेपिरस* में वर्णित विधियों और गणनाओं के आधार पर उन्होंने विशाल इमारतें, तालाबों के विस्तृत जाल और पिरामिड जैसे अनेक हैरतअँगेज़ निर्माण कार्य किए थे।

मानव इतिहास पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि इसी दौर से समाज की प्रगति के लिए गणित तथा गणित पर आधारित ज्ञान-शाखाओं का प्रभावी उपयोग बड़े पैमाने पर शुरू हो चुका था।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सभी चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन: आर.एस.जी. कलानिकेतन महाविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र में सहायक प्रध्यापक हैं। लगभग 12 वर्षों का शिक्षण अनुभव। शैक्षणिक ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ, ग्राफिक्स और वाणिज्यिक विज्ञापन डिज़ाइनिंग में उल्लेखनीय व्यावहारिक विशेषज्ञता रखती हैं।

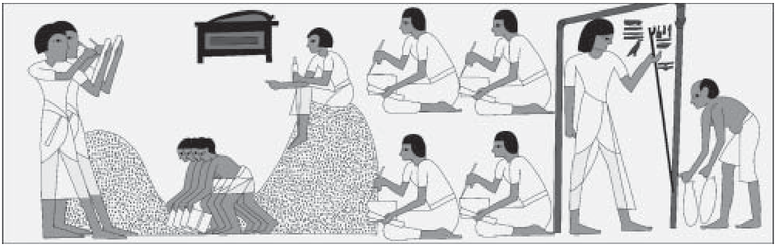

आगामी प्रकाशन

भाषा सीखने-सिखाने के तरीके

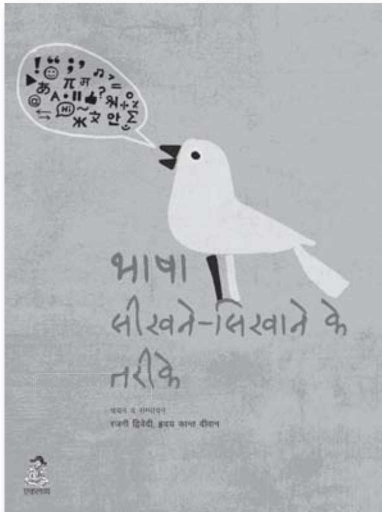

भाषा सीखने-सिखाने के तरीके कैसे हों, ताकि भाषा सीखने का अनुभव सीखने वाले के लिए सार्थकता भरा बन सके?

हमारी इस आगामी किताब में भाषा सीखने-सिखाने के कुछ ऐसे तरीकों का उल्लेख है जिन्हें शिक्षकों ने न सिर्फ खुद विकसित किया है, बल्कि खुद आज़माकर भी देखा है। यह भाषा सिखाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री की प्रकृति और ऐसे ही बहुत-से अन्य ज़रूरी मुद्दों पर भी रोशनी डालती है।

आइए, भाषा-शिक्षण को और अधिक रचनात्मक और सार्थक बनाने के इस सफर का हिस्सा बनें।

विशेष लाइब्रेरी संस्करण हार्डबाउंड में भी उपलब्ध!!

पेपरबैक मूल्य: ₹270   हार्डबाउंड मूल्य: ₹480

आज ही अपनी प्रति बुक करें:

एकलव्य

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

नए विचारों की धीमी गति
शिक्षक प्रशिक्षण के अनुभव

कमलेश चन्द्र जोशी

आम तौर पर शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण इसी उद्देश्य से किए जाते हैं कि शिक्षकों का क्षमतावर्धन होगा और वे प्रशिक्षण में सीखी गई गतिविधियों, तकनीकों और विचारों का उपयोग अपनी कक्षाओं में करेंगे। इस तरह शिक्षा के नए विचार और दृष्टिकोण कक्षा में पहुँच सकेंगे। प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों के साथ होने वाली बातचीत से प्रशिक्षकों को भी यह समझने का अवसर मिलता है कि नई सोच को अपनाने में किस प्रकार की चुनौतियाँ सामने आती हैं। कई बार इन चुनौतियों पर शिक्षकों के साथ विस्तृत चर्चा हो पाती है, तो कई बार केवल हल्की-फुल्की बातचीत। ऐसे ही कुछ अनुभवों से हम यहाँ रूबरू होंगे।

शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान अनेक ऐसे अनुभव सामने आते हैं, जो उनकी सोचने की प्रक्रिया को समझने में मदद करते हैं। अगर मौका दिया जाए तो उनकी बातचीत से यह स्पष्ट होता है कि वे विभिन्न मुद्दों पर किस प्रकार सोच-विचार करते हैं। यह विचार-प्रक्रिया इस ओर भी संकेत करती है कि अलग-अलग विषयों को लेकर उनकी क्या मान्यताएँ और पूर्वधारणाएँ हैं। अधिकांश पूर्वमान्यताएँ उनके अपने शिक्षण अनुभवों या अन्य शिक्षकों के पढ़ाने के तरीकों से प्रभावित होती हैं। यह भी सम्भव है कि इन मान्यताओं की जड़ें किसी पूर्व प्रशिक्षण से जुड़ी हों। कुल मिलाकर, ये मान्यताएँ अक्सर इतनी गहराई से स्थापित हो जाती हैं कि उन पर पुनर्विचार करना आसान नहीं होता।

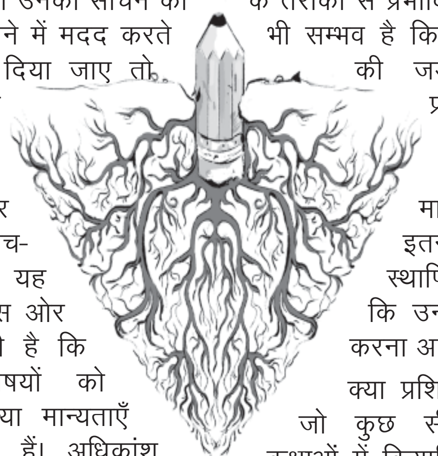

क्या प्रशिक्षणों में शिक्षक जो कुछ सीखते हैं, वह कक्षाओं में क्रियान्वित होता हुआ

दिखाई देता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ईमानदारी से कहना होगा कि शिक्षा में नए विचारों का प्रसार अक्सर बहुत धीमी गति से होता है। ऐसा नहीं होता कि किसी प्रशिक्षण के तुरन्त बाद स्कूलों में सब कुछ एकदम बदला हुआ दिखाई देने लगे। साथ ही, शिक्षकों के साथ होने वाली कार्यशालाओं में स्रोत व्यक्ति के सामने यह चुनौती भी रहती है कि वह चर्चा को जीवन्त बनाए रखे, ताकि शिक्षक अपनी पूर्वमान्यताओं और विश्वासों पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित हों। यहाँ हम ऐसी ही कुछ मान्यताओं को परखने का प्रयास करेंगे।

बच्चे सीख नहीं पाए

बच्चों के न सीख पाने का मुद्दा अक्सर चर्चा का विषय बनता है। कुछ शिक्षक-प्रशिक्षणों में जब शिक्षकों से इस विषय पर उनके कक्षाई अनुभवों के सन्दर्भ में बात की जाती है, तो वे अक्सर कहते हैं – "हम बच्चों को पर्याप्त अवसर देते हैं", "बच्चे नियमित रूप से कक्षा में उपस्थित नहीं होते" या "उनके माता-पिता उनकी पढ़ाई पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते।"

पिछले कई वर्षों से सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षणों में 'बुनियादी साक्षरता' और 'बच्चों का मौखिक भाषा विकास' जैसे विषय प्रमुखता से शामिल किए जाते रहे हैं, फिर भी इनके प्रभाव को प्राथमिक कक्षाओं में पूरी तरह महसूस नहीं किया जा सकता। इसके पीछे कुछ प्रचलित मान्यताएँ भी काम करती हैं। उदाहरण के लिए, कई शिक्षक मानते हैं कि "बच्चे बातचीत तो करते ही हैं, उनसे नाम आदि हम पूछ ही लेते हैं।" इससे यह प्रतीत होता है कि वे बातचीत और पढ़ना सीखने के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से नहीं देख पाते। उनके लिए पढ़ना सीखने का मुख्य आधार वर्णों और मात्राओं की पहचान होता है, और उनकी दृढ़ मान्यता होती है कि बार-बार अभ्यास कराने से बच्चे पढ़ना सीख जाएँगे। यही प्रक्रिया वे सीखने का प्रमुख साधन मानते हैं।

अधिकांश शिक्षकों को यह भी लगता है कि पहले बच्चों को वर्ण-मात्राओं की पहचान अच्छी तरह आ जानी चाहिए, उसके बाद ही आगे की गतिविधियाँ करवाई जाएँ। परिणाम-

स्वरूप कई बार यह देखने को मिलता है कि बच्चे तीसरी कक्षा तक पहुँच जाते हैं, लेकिन तब भी वे न तो वर्ण-मात्राओं की सही पहचान कर पाते हैं और न ही अर्थपूर्ण ढंग से पढ़ना सीख पाते हैं।

जब इसके कारणों पर विचार किया जाता है, तो अक्सर यह तर्क सामने आता है कि बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं आते, इसलिए वे सीख नहीं पाते। बेशक, यह बात स्वीकार करना होगी कि बच्चों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि उनके सीखने को प्रभावित करती है। लेकिन इसके साथ-साथ कक्षा का माहौल, शिक्षण की पद्धतियाँ और शिक्षकों की सोच भी सीखने की प्रक्रिया पर उतना ही गहरा प्रभाव डालती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह उभरकर आती है कि बच्चे अपनी कक्षा में सहज महसूस करें, उनमें आत्मविश्वास और सीखने की अभिप्रेरणा विकसित हो, ताकि उन्हें विश्वास हो कि वे सीख सकते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में बच्चों के साथ सार्थक बातचीत और शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है।

बातचीत के मायने

शिक्षकों की बच्चों से बातचीत को लेकर एक दूसरी धारणा भी उभरकर सामने आती है। उनका मानना होता है कि बच्चे अपने घरों में और दोस्तों के साथ बातचीत तो करते ही हैं, यानी कि वे पहले से भाषा जानते हैं, तो फिर इसमें शिक्षक को अलग से क्या करना है? दरअसल, अक्सर यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि बच्चों से बातचीत के वास्तविक मायने क्या हैं और कब कहा जाए कि कक्षा में सार्थक बातचीत हो रही है। इस सन्दर्भ में शिक्षकों का मत होता है कि वे बच्चों से उनका नाम, घर-परिवार और व्यक्तिगत बातों के बारे में बातचीत तो करते ही हैं।

एक बार शिक्षकों के साथ एक प्रशिक्षण के दौरान उनके सामने यह प्रश्न रखा गया कि आप कक्षा में बच्चों से किस प्रकार बातचीत करेंगे। इस पर कुछ शिक्षकों ने कहा, "सामने के खेत पर बातचीत कर लेंगे", "कुर्सी पर कर लेंगे।" आगे जब उनसे पूछा गया कि वे इन विषयों पर कैसी बातचीत करेंगे, तो उनका कहना था – "खेत में क्या लगा है? इसे कौन लगाता है? कब लगाया जाता है? जैसे सवाल पूछेंगे।" उनके जवाबों से यह स्पष्ट हो रहा था कि बातचीत के उद्देश्य और सन्दर्भ को लेकर उनमें एक साफ समझ अभी विकसित नहीं हो पाई है।

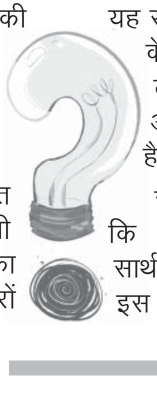

जब उनसे आगे चर्चा की गई कि इस तरह के सवालों की सार्थकता क्या है, तब धीरे-धीरे इस बात पर सबका ध्यान गया

कि सवाल केवल पूछने तक सीमित नहीं रहने चाहिए, बल्कि उनका उद्‌देश्य बच्चों के अनुभवों, विचारों और समझ को सामने लाना होना चाहिए।

जब समूह में यह चर्चा हुई कि 'बातचीत' के लिए कुछ सार्थक सन्दर्भ होना चाहिए, जिससे बच्चे अपना जुड़ाव बना सकें, तब यह उभरकर आया कि पाठ्यपुस्तकों में मौजूद चित्र, कविताएँ और कहानियाँ, साथ ही बाल साहित्य की पुस्तकें, बातचीत के लिए प्रभावी माध्यम बन सकते हैं। इनके आधार पर बच्चों से सार्थक संवाद स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि शिक्षक ऐसे प्रश्न तैयार कर सकें, जिनके माध्यम से बच्चे अपनी सोच, अनुभव और कल्पनाओं को व्यक्त करते हुए जवाब दे सकें। इसलिए सार्थक प्रश्नों पर विचार करना और उन्हें तैयार करने के लिए पर्याप्त समय देना महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस चर्चा में आगे यह सन्दर्भ भी जुड़ता है कि शिक्षक अक्सर कहते हैं, "कुछ बच्चे बोलते नहीं हैं।" ऐसे में यह प्रश्न उभरता है कि यदि बच्चे अपनी बात ही नहीं रख पा रहे हैं, तो वे सीखेंगे कैसे? इन विभिन्न पहलुओं से गुज़रते हुए बच्चों से बातचीत के महत्व को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

कार्यशालाओं के दौरान जब शिक्षकों से पाठ्यपुस्तकों पर चर्चा होती है, तो एक महत्वपूर्ण बिन्दु उभरकर सामने आता है। कई शिक्षकों का मानना होता है कि एनसीईआरटी की पहली और दूसरी कक्षा की पाठ्यपुस्तकें बच्चों के साथ कविता और कहानी जैसे गतिविधि-आधारित कार्यों के लिए तो उपयुक्त हैं, लेकिन वर्ण-मात्राओं के अभ्यास के लिए उन्हें अतिरिक्त सामग्री का सहारा लेना पड़ता है। इस उद्‌देश्य के लिए वे प्राइवेट स्कूलों की किताबों को अधिक उपयोगी मानते हैं।

हालाँकि, शिक्षक-प्रशिक्षणों में इन पाठ्यपुस्तकों की दृष्टि और एप्रोच पर काफी चर्चा हो चुकी है, फिर भी नियमित फॉलो-अप के अभाव में शिक्षकों के बीच इन किताबों से जुड़ा शिक्षण-दृष्टिकोण पर्याप्त रूप से विकसित और स्पष्ट होकर सामने नहीं आ पाता।

सन्दर्भ आधारित शिक्षण

शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान जब हम प्राथमिक कक्षाओं में अर्थ-निर्माण को ध्यान में रखते हुए सन्दर्भ-आधारित शिक्षण की बात करते हैं, तो यहाँ भी अक्सर शिक्षकों को लगता है कि वे पहले से ही ऐसा कर रहे हैं। इसके समर्थन में वे उदाहरण देते हैं कि वे बच्चों से उनके आसपास की किसी वस्तु या किसी चित्र, जैसे आम का चित्र दिखाकर बातचीत करते हैं। वे बच्चों से पूछते हैं, "क्या तुमने आम

खाया है? आम किस रंग का होता है? आम कब मिलता है?" आदि। इसके बाद वे बोर्ड पर 'आम' शब्द लिखकर 'आ' अक्षर की पहचान कराते हैं, 'आ' से बनने वाले अन्य शब्द पूछते हैं और इसी प्रकार गतिविधि को आगे बढ़ाते हैं।

एक शिक्षक से हुई बातचीत में यह सामने आया कि वे पाठ्यपुस्तक के इतर ब्लैकबोर्ड पर किसी विषय, जैसे घर, पेड़, आम या चना – पर आठ-दस वाक्य लिखते हैं और बच्चों से उन्हें पढ़वाते हैं। इन वाक्यों में सामान्यत: ऐसे कथन होते हैं, "यह मेरा घर है", "मैं घर पर रहता हूँ", "घर में दो कमरे हैं" आदि। इन वाक्यों के आधार पर बच्चों से शब्द, वर्ण और मात्रा पहचान का कार्य करवाया जाता है। फिर दो-तीन दिन बाद कोई नया विषय लेकर इसी प्रकार की गतिविधि की जाती है। शिक्षकों द्वारा इन प्रक्रियाओं को ही सन्दर्भ-आधारित या समग्रता-आधारित शिक्षण माना जाता है, जिसमें थोड़ी बातचीत और शेष अभ्यास चलता रहता है।

इस सब में समस्या यह दिखाई देती है कि शिक्षक इस प्रकार की गतिविधियों की सीमाओं को नहीं पहचान पाते। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सामग्री केवल ब्लैकबोर्ड पर लिखी जाती है और कुछ समय बाद मिटा दी जाती है। परिणामस्वरूप, वह सामग्री कक्षा में स्थायी रूप से उपलब्ध नहीं रहती, जिसे बच्चे बार-बार पढ़ सकें और जिसके आधार पर आगे उनसे सार्थक बातचीत की जा सके।

चौथी-पाँचवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तकों के पाठों पर भी यही बात लागू होती है। इस विषय पर चर्चा के दौरान शिक्षकों का अक्सर कहना होता है कि वे पाठ पर पर्याप्त बातचीत करते हैं। लेकिन बातचीत को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उसका प्रमुख केन्द्र केवल यह बताना होता है कि पाठ में क्या कहा गया है। बातचीत का फोकस इस बात पर बिलकुल भी नहीं होता कि किसी पाठ को पढ़कर बच्चे क्या सोच रहे हैं, या वे उसे अपने परिवेश और अनुभवों से किस प्रकार जोड़ पा रहे हैं।

साथ ही, यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि ऐसा कर पाने के लिए शिक्षक की अपनी तैयारी और एक विशेष दृष्टिकोण की ज़रूरत होती है। उदाहरण के लिए, चौथी कक्षा के 'पापा जब बच्चे थे' पाठ को अधिकांश शिक्षक बच्चों की बाल-सुलभ सोच के रूप में ही देखते हैं। एक शिक्षिका का कहना था कि इस पाठ के माध्यम से बच्चों को 'सही दिशा' देनी पड़ेगी, ताकि वे चौकीदार बनने की बजाय कुछ और बनने की इच्छा रखें। दूसरी ओर, यदि इस पाठ को अधिक बारीकी से देखा जाए, तो बच्चों के साथ इस बात पर सार्थक चर्चा की जा सकती है कि एक 'अच्छा इन्सान' होने का क्या अर्थ है। ऐसी चर्चाओं के माध्यम से हम महत्वपूर्ण संवैधानिक मूल्यों की ओर भी संकेत कर सकते हैं।

लिखना और पढ़ना

यदि प्रशिक्षण के दौरान बच्चों को लिखना सिखाने के सम्बन्ध में होने वाली चर्चाओं की बात करें, तो शिक्षकों से अक्सर यह सुनने को मिलता है, "यह बच्चा लिख तो लेता है, लेकिन पढ़ नहीं पाता।" इस कथन से यह समझ में आता है कि सामान्यत: कॉपी करने की क्षमता को ही 'लिखना' मान लिया जाता है। साथ ही, यह मान्यता भी बनी रहती है कि यदि बच्चा ठीक प्रकार से कॉपी कर पा रहा है, तो वह धीरे-धीरे वर्णों एवं मात्राओं की पहचान करना सीख जाएगा, और उसे पढ़ना भी आ जाएगा।

जब बच्चों के स्वतंत्र लेखन की बात आती है, तो अक्सर बच्चे होली, पन्द्रह अगस्त, दीपावली या पहले से पढ़ी गई किसी कहानी के बारे में लिख देते हैं। इसे ही स्वतंत्र लेखन की श्रेणी में रख लिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि बच्चों को लिखने के अवसर दिए जा रहे हैं और वे उसमें शरीक भी हो रहे हैं। शिक्षक ऐसे लेखन के नमूने हमें भी दिखाते हैं।

यदि शिक्षकों से पूछा जाए कि बच्चे ने वास्तव में क्या लिखा है, तो वे अक्सर कहते हैं, "इसने अपने मन से लिखा है। कुछ वर्ण और मात्राओं की गलतियाँ हैं, जो धीरे-धीरे ठीक हो जाएँगी।" जबकि यह समझ विकसित करना अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों को स्वतंत्र लेखन भी सीखना पड़ता है। केवल इतना पर्याप्त नहीं है कि बच्चे कुछ-न-कुछ लिखकर दे दें। ऐसे लेखन में प्राय: मौलिकता का अभाव दिखाई देता है। बच्चों में सार्थक और मौलिक लेखन विकसित करने के लिए शिक्षक को लम्बे समय तक सायास प्रयास करने होंगे। साथ ही, यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि लिखना, पढ़ने की प्रक्रिया से गहरे से जुड़ा हुआ है।

चित्र बनाना

प्रशिक्षणों में अक्सर यह चर्चा भी सामने आती है कि बच्चों को चित्र बनाने के अवसर दिए जाते हैं और वे अच्छे चित्र बनाते हैं। यहाँ 'अच्छे चित्र' से आशय प्रायः ऐसे सुघड़ चित्रों से होता है, जिनमें रंग साफ-सुथरे ढंग से भरे गए हों। इन चित्रों में अधिकतर किसी त्योहार से जुड़े दृश्य या नदी, पहाड़, आसमान, पेड़ और फूलों से युक्त प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं।

जब चर्चा की जाती है कि इन चित्रों में शिक्षक क्या देखते हैं, तो जवाब प्राय: चित्रों के सुडौलपन और रंग-भराई तक सीमित रह जाते हैं। इसके आगे यदि यह प्रश्न उठाया जाए कि बच्चों के चित्रों पर शिक्षक किस तरह के सुझाव देते हैं, तो अक्सर इस पर कोई स्पष्ट विचार उभरकर सामने नहीं आते। ऐसी स्थिति में उन्हें यह संकेत देना पड़ता है कि बच्चों को बाल साहित्य की पुस्तकों में बने चित्रों को देखने के लिए प्रोत्साहित किया जाए और उन्हें अपने अनुभवों तथा कल्पनाओं के आधार पर स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने के अवसर दिए जाएँ, यह अत्यन्त ज़रूरी है।

किसी कार्यशाला में जब बाल साहित्य के उपयोग की बात होती है, तो यह देखने को मिलता है कि शिक्षक चौथी-पाँचवीं कक्षा के बच्चों को किताबें पढ़ने के लिए देने की बात तो स्वीकार करते हैं, लेकिन छोटे बच्चों के सन्दर्भ में उनकी एकदम अलग धारणाएँ उभरकर सामने आती हैं। अक्सर उनका कहना होता है कि छोटे बच्चों को किताबें देने से पहले उन्हें वर्णों और मात्राओं की पहचान करना आ जाना चाहिए। कभी-कभी यह भी सुनने को मिलता है कि छोटे बच्चे किताबें फाड़ देंगे।

इनसे यह समझ में आता है कि प्रारम्भिक कक्षाओं में बच्चों और पुस्तकों के सम्बन्ध को लेकर शिक्षकों के मन में कई पूर्वधारणाएँ मौजूद हैं,

जिन पर प्रशिक्षण के दौरान गम्भीरता से बातचीत किए जाने की आवश्यकता है।

* * *

इन सब अनुभवों से यह भी समझ में आता है कि कार्यशालाओं के माध्यम से शिक्षकों के साथ अनेक महत्वपूर्ण चर्चाएँ तो की जा रही हैं, लेकिन अक्सर उन विचारों को शिक्षक पढ़ाने के तरीके में उतार नहीं पा रहे हैं। इसके पीछे कई कारण दिखाई देते हैं। शायद शिक्षक ये विचार उतनी गहराई से समझ नहीं पाते या वे स्वयं इन विचारों को लेकर पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो पाते। सम्भव है कि प्रशिक्षणदाताओं की ओर से नियमित संवाद और सहयोग नहीं मिल पाता, वहीं कई बार ज़मीनी परिस्थितियों और विद्यालय वास्तविकताएँ भी ऐसी विकट होती हैं जिनकी वजह से नए विचारों को कक्षा में प्रभावी ढंग से कार्यान्वित कर पाना मुश्किल हो जाता है।

अक्सर मुझे यह भी महसूस होता है कि प्रशिक्षणदाता या रिसोर्स पर्सन को प्रशिक्षण के केवल एक सत्र के बाद शिक्षकों को उनके हाल पर नहीं छोड़ देना चाहिए। जिस ‘स्कैफोल्डिंग’ की चर्चा हम बच्चों के सीखने के सन्दर्भ में बार-बार करते हैं, उसी प्रकार की ‘स्कैफोल्डिंग’ शिक्षकों के सीखने, नए विचारों के प्रति भरोसा विकसित करने और अपने कक्षा-अनुभवों को सहजता से साझा कर पाने के लिए भी आवश्यक है। इसके लिए ऐसे प्रयासों की ज़रूरत होगी, जिनमें प्रशिक्षणदाताओं के साथ-साथ शिक्षकों की ओर से भी सक्रिय पहल और निरन्तर सहभागिता सुनिश्चित हो सके।

कमलेश चन्द्र जोशी: प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कई संस्थाओं के साथ जुड़कर तीस वर्षों तक गहराई से कार्य किया। हाल ही में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, ऊधमसिंह नगर से सेवानिवृत। वर्तमान में लखनऊ में निवास व कुछ संस्थाओं के साथ जुड़कर स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे हैं।

सभी चित्र: अन्वेशा बरनवाल: नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिज़ाइन, असम से डिज़ाइन में स्नातक (B.Des.) की पढ़ाई कर रही हैं। पिछले एक वर्ष से बाल-पुस्तक चित्रांकन और दृश्यात्मक कहानी-कथन (visual storytelling) पर काम कर रही हैं। वर्तमान में एकलव्य फाउंडेशन, भोपाल से इंटर्नशिप कर रही हैं।

स्कूल में बनी सरकार

लोकतंत्र का पहला पाठ

अनिल सिंह

उस समय शहर में नगर निगम के चुनावों का माहौल था। पोडियम में एक बच्चे ने बताया कि उसकी बस्ती में कल बैंड-बाजे के साथ कुछ लोग आए थे। वे पर्चे बाँट रहे थे और चुनाव में वोट देने की बात कर रहे थे। फिर बरगद के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर भाषण भी हुआ था। भाषण देने वाले कह रहे थे कि स्कूल के पास पीने के पानी की एक बड़ी टंकी बनवाई जाएगी।

कक्षा में भी किसी-न-किसी बहाने सरकार की चर्चा हो रही थी। एक कक्षा में बात यहाँ तक पहुँची कि जैसे पूरे देश की एक सरकार होती है, प्रदेश की अपनी एक सरकार होती है, वैसे ही शहर की व्यवस्था सँभालने के लिए भी एक सरकार होती है। इसे नगर निगम कहा जाता है। गाँवों में इसी तरह की व्यवस्था को ग्राम पंचायत कहते हैं।

बच्चों द्वारा बच्चों की सरकार

बच्चों की ओर से सवाल आया कि क्या हमारे स्कूल की व्यवस्था के लिए भी कोई सरकार बनाई जा सकती है? हमने कहा, "बिलकुल बनाई जा सकती है।"

वैसे भी स्कूल में एक व्यवस्था पहले से मौजूद है। यहाँ अलग-अलग विषयों के शिक्षक हैं, रसोई की व्यवस्था है, खेलकूद की व्यवस्था है, पैसे का हिसाब-किताब रखने की ज़िम्मेदारी है, साफ-सफाई के सहायक हैं, बगीचे की देखभाल करने वाले सहायक हैं और एक प्रिंसिपल हैं। समय-समय पर बैठकें होती हैं, योजनाएँ बनाई जाती हैं और हर दिन का टाइम-टेबल तय किया जाता है। यह सब भी एक तरह से सरकार जैसी ही व्यवस्था है। सभी शिक्षक और बच्चों की एक मासिक बैठक भी होती है, जिसमें स्कूल से जुड़े हर तरह के मुद्दों और मामलों पर चर्चा की जाती है।

लेकिन बच्चे तो चुनाव की बात कर रहे थे। उनका कहना था कि इसके लिए न तो चुनाव हुआ और न ही वोट डाले गए फिर सरकार कैसे बन गई। असल में, वोट डालने को लेकर उनकी खासी उत्सुकता थी। और यह बात उनके अनुभव में शामिल थी कि घर के बड़े चुनाव में शामिल होते हैं, चुनाव की खूब बातें

आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल

समिति प्रमुख चुनाव - 2014

विभिन्न समितियों के प्रमुख के चुनाव के लिए प्राप्त नामांकन

आयोजन समिति - कोई नामांकन नहीं हुआ
व्यवस्था समिति - पार्थ, नन्दन, भूमिका - तीन उम्मीदवार
खेलकूद समिति - भूमिका, पार्थ - दो उम्मीदवार
मेडिकल समिति - अंबर, बीहु, अनीसा - तीन उम्मीदवार
लड़ाई-झगड़ा निपटान समिति - अंबर, बीहु, परी, अनीसा - चार उम्मीदवार
छपाई समिति - बीहू, अनीसा - दो उम्मीदवार
पढ़ाई-लिखाई समिति - प्रकृति, पूनम - दो उम्मीदवार

नाम वापसी

मेडिकल समिति - भूमिका ने मेडिकल समिति से अपना नाम वापस लिया

होती हैं, वे वोट डालने भी जाते हैं पर उन्हें ये मौका नहीं मिलता।

कार्यक्षेत्र व ज़िम्मेदारियों की पहचान

इस तरह स्कूल में बच्चों की भागीदारी वाली एक सरकार बनाने पर सहमति बनी। इसके लिए चुनाव कराने का निर्णय लिया गया। धीरे-धीरे यह विचार स्पष्ट होता गया। व्यवस्था को समझने के लिए अलग-अलग कार्यक्षेत्रों और ज़िम्मेदारियों की पहचान की गई। सुबह की बैठकों और कक्षा में हुई चर्चाओं के दौरान स्कूल के भीतर होने वाले अनेक कामों पर विस्तार से बात हुई। इनमें साफ-सफाई, चाय और भोजन बनाना, पढ़ना-पढ़ाना, बगीचे की देखभाल, खेलकूद, मीटिंग, बाहर घूमने जाना, फिल्म देखना, गीत-संगीत और नाटक, समर कैंप आयोजित करना, स्कूल के लिए स्टेशनरी लाना, खिलौने और प्रयोग सम्बन्धी सामान लाना, तथा बिजली, कंप्यूटर, नल, गैस सिलेंडर और पंखों की मरम्मत जैसे काम शामिल थे। इस तरह कार्यों की एक लम्बी सूची तैयार हुई। बच्चों के साथ गहन चर्चा के बाद इन सभी कामों को जोड़-घटाकर मोटे तौर पर छह प्रमुख श्रेणियों में बाँटा गया। तय हुआ कि इन्हीं कार्यक्षेत्रों की समितियों के लिए चुनाव होंगे और उनके समिति प्रमुख मिलकर स्कूल सरकार का गठन करेंगे।

लड़ाई-झगड़ा निपटान समिति का नाम बड़ी उम्र के समूह की एक बच्ची, अंबर ने सुझाया। उसका कहना था कि यह बहुत ज़रूरी समिति है और इसके बिना काम नहीं चल

सकता। दरअसल, उसकी खुद की रुचि भी ऐसे कामों में थी। वह अक्सर लोगों के बीच समझौता कराती, साथी बच्चों को समझाती और छोटे बच्चों के आपसी झगड़ों में बीच-बचाव करती थी। उसे मीटिंग बुलाकर ऐसे मसलों पर चर्चा करना, समाधान निकालना और माहौल को फिर से सामान्य बनाना एक महत्वपूर्ण काम लगता था।

जिन समितियों के समिति प्रमुखों के लिए चुनाव होना था, वे इस प्रकार थीं – पढ़ाई-लिखाई समिति, रसोई समिति, खेलकूद समिति, मेडिकल समिति, लड़ाई-झगड़ा निपटान समिति और साफ-सफाई व्यवस्था समिति। इन सभी समितियों के नाम सामूहिक चर्चा के बाद बच्चों ने ही तय किए थे।

चुनाव प्रक्रिया

एक शिक्षक को विधिवत चुनाव प्रभारी बनाया गया। बच्चों ने समितियों की ज़िम्मेदारियों और अपने रुझान

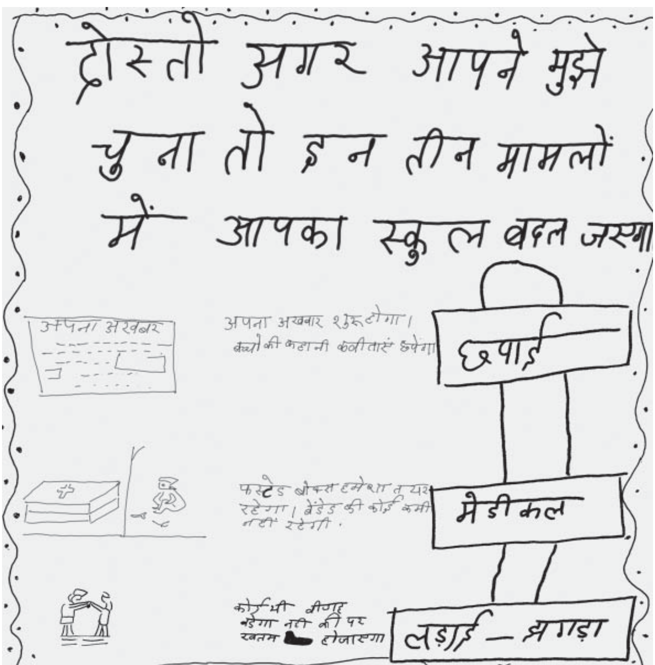

पुनःचित्रांकन: अदिति पुतिगे

चित्र-1: *एक बच्चे द्वारा चुनाव प्रचार के लिए बनाया गया पोस्टर*

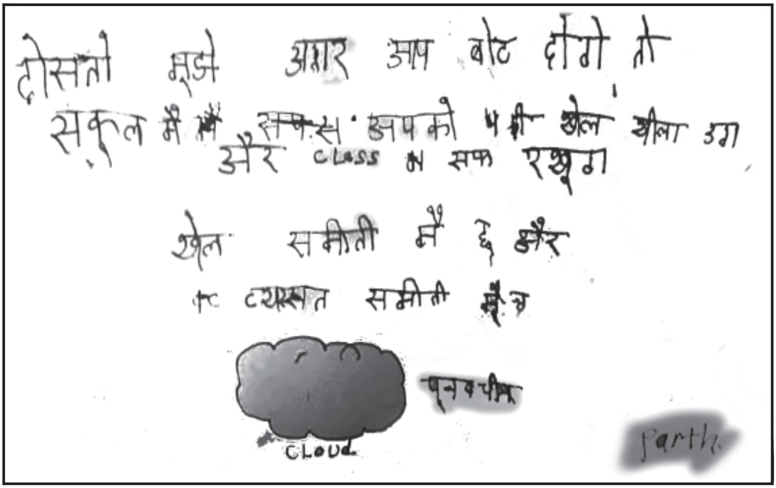

फोटो: अनिल सिंह

चित्र-2: *एक बच्चे द्वारा चुनाव प्रचार के लिए बनाया गया पोस्टर*

के अनुसार विभिन्न पदों के लिए अपने नाम प्रस्तावित किए। इसके लिए बाकायदा नामांकन फॉर्म भरे गए।

चार समितियों के लिए पाँच या उससे अधिक नामांकन प्राप्त हुए, जबकि बाकी दो समितियों के लिए दो-दो नामांकन आए। इसके साथ ही यह भी तय किया गया कि प्रत्येक समिति में प्रमुख के अलावा काम में सहयोग के लिए कम-से-कम तीन और अधिकतम पाँच सदस्य होने चाहिए। इसके लिए बच्चे स्वेच्छा से अपने नाम दे सकते थे।

बाकायदा मतदान की तारीख तय की गई। उम्मीदवार बच्चों ने अपने प्रचार के लिए स्कूल में रंग-बिरंगे पोस्टर बनाए। समिति का प्रमुख चुने जाने पर वे कौन-कौन से नए काम करेंगे, उनकी क्या योजनाएँ हैं और वे स्कूल को किस तरह बेहतर बनाना चाहते हैं – इस बारे में उन्होंने सुबह की संगीत सभा में सबके सामने भाषण दिए। उन्होंने अपने विचारों और वादों को लिखकर एक घोषणापत्र भी तैयार किया।

पढ़ाई-लिखाई समिति के प्रमुख पद की उम्मीदवार बच्ची प्रकृति ने कहा कि वह स्कूल में कहानियों की और अधिक किताबें मँगवाएगी। खेलकूद समिति के प्रमुख पद के उम्मीदवार पार्थ ने कहा कि फुटबॉल फट गई है, इसलिए नई फुटबॉल मँगवाई जाएगी। उसने बास्केटबॉल के लिए नई गेंद लाने और कबड्डी के मैदान में और रेत डलवाने की बात भी कही।

यह पूरा माहौल लगभग एक सप्ताह तक बना रहा। इस दौरान सभी उम्मीदवार बच्चों ने अपने चुने जाने के लिए पूरी तरह दुनियावी अन्दाज़ में प्रचार-प्रसार किया। एक बच्ची ने तो छोटे बच्चों को चॉकलेट बाँटी और उन्हें अपना चुनाव चिन्ह 'क्राउन' दिखाकर कहा कि वोट देते समय 'क्राउन' पर ही स्टैम्प लगाना है।

खेलकूद समिति के पद के उम्मीदवार पार्थ ने एक दिन बच्चों के साथ मिलकर खेलकूद के सभी सामान और उन्हें रखने की जगह को व्यवस्थित किया। वह रोज़ खेल के समय पहल करके पूरे सत्र का नियोजन करता, नए-नए खेल सुझाता और बच्चों को खिलाता था। एक तरह से वह अपनी रुचि, क्षमता और सम्भावनाओं का परिचय दे रहा था, ताकि लोग उसे ही चुनें।

हमने कंप्यूटर से प्रिण्ट निकालकर मतपत्र तैयार किए। घर, तितली, मिक्की, क्राउन, दिल और क्लाउड जैसे चुनाव चिन्ह उम्मीदवारों को दिए गए। मतपत्र में समिति का नाम, समिति प्रमुख पद के उम्मीदवार बच्चे का नाम, उसका चुनाव चिन्ह और उसके आगे एक खाली जगह छोड़ी गई, जहाँ मुहर लगानी थी।

आर्ट एंड एस्थेटिक रूम की चित्रकारी किट में एक छोटा रबर स्टैम्प था, जिस पर हार्ट बना हुआ था। चुनाव के दौरान इसी स्टैम्प और

आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल

समिति प्रमुख चुनाव चिन्ह - 2014

अंवर		
अनीसा		
वीहू		
पूनम		
प्रकृति		

चित्र-3

इंक पैड का इस्तेमाल चुनाव चिन्हों पर मुहर लगाने के लिए किया गया।

मतदान का अधिकार

मतदान वाले दिन बाकायदा एक टेबल पर बाँस की सहायता से चादर का पर्दा लगाया गया। उसके पीछे एक कार्टन बॉक्स को मतपेटी बनाकर रखा गया। वहीं पास में चुनाव प्रभारी शिक्षक बच्चों की मदद और पूरी प्रक्रिया की निगरानी के लिए बैठे थे। उस दिन स्कूल का माहौल बिलकुल अलग और उत्साह से भरा हुआ था।

शुरुआत में बच्चों को लगा था कि कक्षा 1 से 5 तक के छोटे बच्चों को इस प्रक्रिया में शामिल नहीं किया जाएगा। लेकिन बाद में यह तय हुआ कि स्कूल से जुड़े हर व्यक्ति को इस

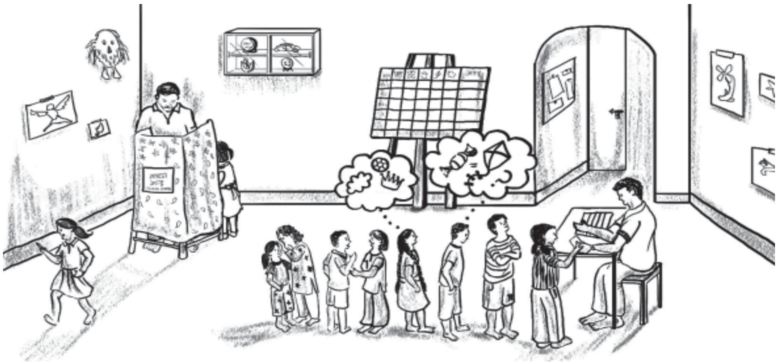

चित्र: अदिति पुतिगे

चुनाव में भाग लेने का अधिकार है। छोटे बच्चों को भी पूरी चुनाव प्रक्रिया के बारे में समझाया गया।

इसी तरह साफ-सफाई सहायक विनोद, छोटे बच्चों की देखरेख करने वाली सहायिका तारा और खाना बनाने वाली देवी दीदी को भी वोट देने के लिए बुलाया गया। शिक्षकों ने भी समान रूप से मतदान किया। सभी के वोटों की गिनती बराबर मानी गई - हर व्यक्ति का एक वोट।

मतदान के बाद मतपत्रों की गिनती की गई और चुनाव परिणाम तैयार किए गए। इसके बाद चुने गए समिति प्रमुखों के नामों की घोषणा की गई। सभी छह समिति प्रमुखों को बुलाकर उन्हें निर्वाचन प्रमाणपत्र भी दिए गए।

इन छह समिति प्रमुखों को मिलाकर स्कूल प्रबंधन समिति बनाई गई, जिसमें मुझे एक अतिरिक्त सदस्य के रूप में नामांकित किया गया। इस तरह सात सदस्यों वाली एक स्कूल सरकार का गठन हुआ।

इन समितियों के लिए अतिरिक्त सहायक सदस्यों के रूप में बच्चों ने अपनी रुचि और समिति के कामकाज को ध्यान में रखते हुए स्वेच्छा से अपने नाम दिए। इस तरह हर समिति में तीन से पाँच सदस्य और जुड़ गए। अब यह कुल 28 लोगों का एक कैबिनेट था। यह तय किया गया कि यह व्यवस्था एक वर्ष तक लागू रहेगी। अगले सत्र की शुरुआत में इसी तरह फिर से चुनाव कराए जाएँगे।

स्कूल सरकार का संचालन

स्कूल सरकार बनने के बाद बैठकों का सिलसिला शुरू हुआ। शुरुआती बैठकों में शिकायतों की भरमार रहती थी, लेकिन धीरे-धीरे बच्चों को काम की गम्भीरता समझ में आने लगी और मुद्दों पर सार्थक

बातचीत शुरू हुई। इस दौरान बच्चों ने कई ज़बरदस्त समाधान भी निकाले।

पढ़ाई-लिखाई समिति की प्रमुख ने सभी बच्चों के साथ मिलकर स्कूल में इधर-उधर बिखरी छोटी-बड़ी पेंसिलें, कटर और रबर इकट्ठे किए। इन चीज़ों के लिए अलग-अलग डिब्बे बनाए गए और उन्हें उसकी निगरानी में रखा गया, ताकि व्यवस्था बनी रहे। यह नियम भी बनाया गया कि काम के बाद पेंसिल, रबर और कटर वापस उन्हीं डिब्बों में रखे जाएँ।

पुरानी कॉपियों में बचे खाली पन्नों को निकलवाकर एक जगह इकट्ठा किया गया और उन्हें सभी कक्षाओं में बराबर बाँटा गया। इसी तरह घरों और स्कूल से वन-साइडेड कागज़ इकट्ठा करके एक बॉक्स में रखवाए गए, ताकि चित्रकारी और अन्य आर्ट-क्राफ्ट के कामों में इन्हीं रद्दी समझे जाने वाले कागज़ों का इस्तेमाल किया जा सके।

एक जगह से पाँच हज़ार रुपए की सहायता राशि मिली थी। स्कूल के लिए खेल सामग्री खरीदने का प्रस्ताव पहले से ही मौजूद था। इस पर निर्णय लेने की ज़िम्मेदारी खेलकूद समिति ने सँभाली। पार्थ ने अपनी समिति और बाकी बच्चों के साथ इस विषय पर चर्चा की। इसके बाद विजय के साथ जाकर बच्चों ने वॉलीबॉल, फुटबॉल, चार रैकेट और शटल, एक नेट, क्रिकेट बैट, रबर की गेंद और लेग गार्ड्स खरीदे।

यह पूरा सामान समिति की निगरानी में रखा गया और उसके उपयोग तथा देखभाल की ज़िम्मेदारी भी समिति ने ही सँभाली।

यह स्कूल सरकार पूरे साल सक्रिय रही। इसके माध्यम से बच्चों ने वोटिंग, चुनाव, बैठकें, योजनाएँ बनाने और प्रस्ताव रखने जैसी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का गहरा अनुभव हासिल किया।

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तकालय संवर्धन का काम कर रहे हैं।

चित्र: अदिति पुत्तिगे: सृष्टि इंस्टीट्यूट ऑफ आर्ट, डिज़ाइन एंड टेक्नोलॉजी, बैंगलोर से डिज़ाइन की पढ़ाई। वर्तमान में रियाज़ अकादमी फॉर इलस्ट्रेटर्स में अध्ययनरत तथा बाल साहित्य और चित्रांकन के क्षेत्र में सक्रिय रुचि। अपने काम में विशेष रूप से पारिस्थितिकी, जेंडर और भोजन जैसे विषयों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों को समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करती हैं।

विशाखा गाइडलाइन्स के तीन दशक

विशाखा समिति से...पॉश कमेटी...तक का सफर

माधव केलकर

कुछ समय पहले, मुझे किसी संस्था के नए कार्यकर्ताओं के लिए आयोजित संस्थागत उन्मुखीकरण सत्र में शामिल होने का मौका मिला। आम तौर पर, गैर-शासकीय संगठनों के ऐसे सत्रों में नए कार्यकर्ताओं को संस्था की सेवा शर्तों (सर्विस रूल्स), स्टाफ वेलफेयर पॉलिसी, संस्था की विविध नीतियों और काम के माहौल वगैरह से अवगत करवाया जाता है, ताकि नव-आगंतुक अपने कार्यक्षेत्र के माहौल में धीरे-धीरे रच-बसकर आसानी-से काम कर सकें। विविध सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक पृष्ठभूमि से आए युवाओं के साथ जाने-अनजाने ही सही – गैर-बराबरी, जातिवाद, असहिष्णुता, लैंगिक भेदभाव, कमज़ोरों को दबाना, शोषण करना और वर्चस्व की भावना जैसी प्रवृत्तियाँ कार्यस्थल पर उभरकर आ सकती हैं। इन तमाम प्रवृत्तियों को रातों-रात हटा पाना तो सम्भव नहीं है, लेकिन खुद पर संयम रखने का हुनर आ जाए तो धीरे-धीरे इन्हें कम करना सहज एवं सम्भव हो जाता है और धीरे-धीरे आपकी सोच में भी अन्तर आ सकता है। सभी कार्यकर्ता सोच के मामले में एक-से स्तर पर आ

सकें इसलिए भी ऐसे ओरिएंटेशन सत्र महत्वपूर्ण होते हैं।

खैर, एक बार फिर उस संस्था के ओरिएंटेशन सत्र की ओर लौटते हैं। इस सत्र के दौरान, संस्थान की विविध नीतियों के बारे में बताने के बाद, पॉश समिति के बारे में जानकारी दी गई। सत्र में बताया गया कि भँवरी देवी के साथ किस तरह दुर्व्यवहार हुआ और कैसे यह मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुँचा, जिसके बाद सुप्रीम कोर्ट द्वारा सन् 1997 में 'विशाखा गाइडलाइन्स' जारी की गईं। फौरीतौर पर कई शासकीय और गैर-शासकीय कार्यालयों में महिलाओं के साथ यौन-दुर्व्यवहार रोकने के लिए 'विशाखा समिति' गठित की गई। इसके बाद सन् 2013 में, भारत सरकार ने एक अधिनियम (प्रिवेंशन ऑफ सेक्शुअल हरैसमेंट अगेंस्ट वीमन, POSH) बनाया और बाद में इस कानून को, इसकी नियमावली के तहत आने वाले सभी सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में लागू किया जाने लगा। इस कानून के तहत बनी समितियों को 'पॉश समिति' कहा जाने लगा। धीरे-धीरे सभी विशाखा समितियों को भी पॉश समिति कहा जाने लगा। (आम बोलचाल में इसे कैश समिति भी कहा जाता है। कैश मतलब कमेटी अगेंस्ट सेक्शुअल हरैसमेंट, CASH.) इसके बाद, इस कानून के तहत गठित होने वाली समिति, इस समिति द्वारा किसी शिकायत को स्वीकार करने से लेकर दोषी या निर्दोष होने के निर्णय तक पहुँचने के विविध चरणों (प्रोसिडिंग्स) वगैरह के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई।

विभिन्न ग्रामीण इलाकों से पहली बार काम करने आए युवा बेहद अचरज के साथ यह सब सुन रहे थे। खुला माहौल, काम का आनन्द जैसे सपने संजोए जा रहे थे। तभी फेसिलिटेटर महोदय ने बताया कि यदि महिला कर्मचारी की शिकायत झूठी पाई जाती है, या शिकायत के साथ पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाएँ तो शिकायतकर्ता महिला पर भी कार्यवाही की जा सकती है। जिस व्यक्ति के खिलाफ शिकायत की गई है, वह कोर्ट जाकर मानहानि का केस भी कर सकता है।

जैसे ही यह बात कही गई, कई सहभागियों के चेहरों पर चिन्ता की लकीरें खिंच गईं। मुझे भी ऐसा महसूस हुआ कि यहाँ कुछ गड़बड़ हो गई है। आरोप लगाने वाले को साक्ष्य जुटाकर प्रस्तुत करने होंगे, अन्यथा सज़ा के लिए मानसिक तैयारी भी रखनी होगी। शायद यही वो बात थी जो महिला कार्यकर्ता की नीयत या शिकायत को शक के दायरे में लाकर खड़ा कर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि इससे कार्यस्थल का खुला और लोकतांत्रिक माहौल प्रभावित हो सकता है।

मुझे याद आया कि सन् 2013 में, जब पॉश एक्ट का ड्राफ्ट बनाया जा

रहा था तब जस्टिस वर्मा ने महिला शिकायतकर्ताओं के लिए सज़ा के प्रावधानों को शामिल न करने की अनुशंसा की थी। यह अनुशंसा शायद इस समझ पर आधारित थी कि शिकायत करते हुए महिला कार्यकर्ताओं को किसी भी तरह की आशंका या भय न रहे।

जब सब अच्छा चल रहा है...

विशाखा गाइडलाइन्स को लागू हुए लगभग 28 बरस से ज़्यादा हो गए हैं। मुझे याद पड़ता है, जब 1998-99 में कई गैर-शासकीय संस्थाओं में विशाखा समिति बनाने की चर्चा चल पड़ी थी और कार्यकर्ताओं को विशाखा गाइडलाइन्स का ओरिएंटेशन दिया जाने लगा था, तो बहुतेरे पुरुष और महिला कार्यकर्ता इसे गैर-ज़रूरी बताते थे। उनका तर्क था कि हमारी संस्था में सब अच्छा चल रहा है। कभी कोई घटना नहीं घटी, कभी किसी महिला की ओर से शिकायत ही नहीं आई। जब काम का इतना अच्छा माहौल है तो विशाखा समिति की क्या ज़रूरत है?

मुझे विशाखा गाइडलाइन्स के ओरिएंटेशन का एक किस्सा याद आता है, जब दिल्ली विश्वविद्यालय से आईं एक फेसिलिटेटर हमें विशाखा समिति की ज़रूरत, समिति के कार्यक्षेत्र के दायरे, यौन-शोषण के तहत क्या-क्या आता है, इन सब की जानकारी दे रही थीं। उस दौरान हमारे एक युवा साथी से रहा नहीं गया और वह कहने लगा, “इस समिति की वजह से मैं किसी भी लड़की को प्रपोज़ नहीं कर सकूँगा। मुझे हमेशा भय रहेगा कि लड़की मेरी शिकायत कहीं विशाखा समिति में न कर दे। अभी तक मैं कम-से-कम इतना रिस्क तो ले ही सकता था, लेकिन अब अपने दिल की बात नहीं कह सकूँगा।”

फेसिलिटेटर ने मुस्कुराकर कहा, “विशाखा समिति प्यार के खिलाफ नहीं है। अगर आप किसी लड़की के लिए प्यार के भाव रखते हैं, तो आप सौम्य तरीके से ज़रूर उसका इज़हार कर सकते हैं। यदि लड़की भी आपके लिए प्यार के भाव रखती होगी, तो बात आगे बढ़ सकती है। लेकिन अगर लड़की इनकार कर दे तो आपको वहीं रुक जाना चाहिए। इसी तरह, विशाखा समिति महिला-पुरुष सहकर्मियों की दोस्ती के खिलाफ भी नहीं है। दोस्तियाँ खूब पनपनी चाहिए, मिलकर जोश के साथ काम करना चाहिए लेकिन जिस संयम की दरकार है, उसका भी ध्यान रखना उतना ही ज़रूरी है। यौन शोषण की रोकथाम, निषेध व निवारण – यही मूलमंत्र है।

पॉश समिति की समीक्षा

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, विशाखा गाइडलाइन्स को लागू हुए लगभग 28 बरस हो चले हैं। यदि

आप सरसरी तौर पर पिछले दो दशकों के अखबारों, पत्रिकाओं, न्यूज़ चैनलों की खबरों को याद करने की कोशिश करेंगे, तो पता चलेगा कि भारत के विविध राज्यों के कई शासकीय दफ्तरों, अस्पतालों, स्कूलों, कॉलेजों, संस्थानों, प्राधिकरणों, महासंघों और बैंकों में लम्बे समय तक पॉश कमेटी स्थापित नहीं हुई थी। जबकि समिति स्थापित नहीं होने की स्थिति में दण्ड का प्रावधान भी है।

जैसा कि आप शायद जानते होंगे, कैश या पॉश समिति संगठित और असंगठित क्षेत्र, दोनों दायरों में आने वाली महिला कार्यकर्ताओं के लिए है। संगठित क्षेत्र के लिए गठित होने वाली समिति को 'आन्तरिक समिति' कहते हैं। इसके सदस्य सम्बन्धित संस्थान से होते हैं। असंगठित क्षेत्र के लिए, 'स्थानीय समिति' का गठन सम्बन्धित शासकीय अधिकारी को करना होता है। स्थानीय समितियों का गठन और सुचारू संचालन अक्सर चिन्ता का विषय बना रहता है। लेकिन संगठित क्षेत्र में भी दण्ड का प्रावधान होने के बावजूद कई संस्थानों में लम्बे समय तक पॉश समिति के गठन को अनदेखा किया जाता रहा है।

कुछ साल पहले, मैं मध्य प्रदेश के पड़ोसी राज्य के एक संस्थान में गया था। मैंने वहाँ देखा कि कुछ लोग एक महिला सहकर्मी को बधाई दे रहे हैं। उस महिला को महिला शिकायत निवारण समिति के लिए मनोनीत किया गया था। पूछताछ करने पर मुझे पता चला कि उस संस्थान में विशाखा समिति नहीं थी। उसकी बजाए, वहाँ संस्थान के डायरेक्टर की अध्यक्षता में एक महिला शिकायत निवारण प्रकोष्ठ था। इस प्रकोष्ठ में पाँच-छह पुरुष सदस्यों के साथ-साथ तीन-चार महिला सदस्य भी थीं। जब मैंने पूछा कि आपके संस्थान में विशाखा समिति गठित क्यों नहीं हो पाई तो मुझे बताया गया कि अभी उसकी प्रक्रिया चल रही है।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, मैं कुछ उदाहरण भी साझा करता चलूँगा। मैं ज़्यादातर उदाहरण संगठित दायरे में आने वाले संस्थानों से ही दूँगा, लेकिन मुद्दे की गोपनीयता की वजह से किसी भी व्यक्ति या संस्था का नाम नहीं लूँगा।

जब आप विशाखा गाइडलाइन्स या पॉश समिति की समीक्षा कर रहे होते हैं तो मामला सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं हो सकता कि समिति स्थापित हुई है या नहीं। बल्कि जहाँ समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं, वहाँ उनका कामकाज कैसा चल रहा है, क्या वहाँ महिला कार्यकर्ता खुले-लोकतांत्रिक माहौल को महसूस कर पा रही हैं, क्या महिला कार्यकर्ताओं को शिकायत दर्ज कराने के बाद न्याय मिल रहा है, क्या उन संस्थानों में लैंगिक समानता या संवेदनशीलता

बढ़ी है, क्या आत्मसंयम दिखाई देता है – ऐसी कई बातें हैं जो समिति की स्थापना और समिति के कामकाज से जुड़ी होंगी। हम बारी-बारी से समिति के कामकाज, दबाव में भी काम करने की उसकी क्षमता और समिति के अन्दर यौन उत्पीड़न को लेकर बढ़ी संवेदनशीलता जैसे कई पहलुओं को टटोलने की कोशिश करेंगे।

समिति का गठन और सदस्य

किसी संस्थान की पॉश आन्तरिक समिति में सदस्य कौन हो सकते हैं, यह निर्णय संस्थान के प्रबन्धन को लेना होता है। गाइडलाइन सिर्फ इतना कहती है कि संख्या बल में कम-से-कम आधी महिलाएँ हों।

कुछ खुली सोच वाले संस्थान अपनी पॉश समिति में सफाईकर्मी महिला कार्यकर्ताओं से लेकर शीर्ष पर कार्यरत महिलाओं तक को शामिल करते हैं। कुछ संस्थानों में सिर्फ पढ़ी-लिखी, अकादमिक कामकाज करने वाली महिलाएँ ही सदस्य होती हैं। कुछ अन्य संस्थाओं में महिला सदस्यों का चयन करते समय जाति, धर्म, काम की विविध श्रेणियों और महिला मुद्दों पर काम का अनुभव आदि को प्रतिनिधित्व मिल सके, इसका ध्यान रखा जाता है।

कुछ साल पहले मैं महाराष्ट्र की एक शासकीय आवासीय शाला के दौरे पर गया था। वहाँ की पॉश समिति में महिला शिक्षिका व कक्षा 9वीं की लड़कियों के अलावा भोजन पकाने वाली महिलाओं को भी समिति का सदस्य बनाया गया था। खास बात यह है कि इन महिलाओं को पता था कि वे पॉश समिति की सदस्य हैं और उन्हें इसके लिए एक खास भूमिका निभानी है जिससे शाला में बेहतर वातावरण बना रहे।

मेरे खयाल से पॉश समिति में सभी तरह के लोगों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। हो सकता है, कम औपचारिक पढ़ाई वाले सदस्यों के उन्मुखीकरण पर ज़्यादा मेहनत करनी पड़े। तो, थोड़ी मेहनत कर लेना अच्छा होगा, क्योंकि इन सदस्यों के व्यक्तित्व के अन्य पहलू (उदाहरण के लिए, संस्थान में महिलाओं के साथ सहजता से बात कर सकना) समिति के लिए अत्यन्त लाभप्रद साबित हो सकते हैं। इसके अलावा, इससे संस्थान में विविध स्तरों पर काम कर रही महिलाओं में जागरूकता, संवेदनशीलता और समिति के प्रति भरोसा बढ़ता है।

बाहरी सदस्य का महत्व

पॉश समिति में एक बाहरी सदस्य का होना अनिवार्य है। संस्थानों में कई साथियों को अक्सर लगता है कि पॉश समिति में बाहरी सदस्य की क्या ज़रूरत है। संस्था के भीतर की बात संस्था में ही रखी जानी चाहिए। ऐसी ही सोच कई बार समिति के अन्दरूनी सदस्यों की भी होती है। एक्ट को ध्यान से देखने पर समझ आता है कि बाहरी सदस्य से कुछ अपेक्षाएँ होती हैं, जैसे - वह कानून का ज्ञान रखता हो, यौन उत्पीड़न के मुद्‌दों को निपटाने का अनुभव रखता हो, साथ-ही-साथ महिलाओं की शिकायतों पर तटस्थ और निष्पक्ष राय रख सकता हो। बाहरी सदस्य की वजह से समिति में सन्तुलन तो आता ही है, साथ ही समिति निष्पक्ष रहते हुए न्याय दिलवाने की कोशिश भी करती है।

यदि किसी पॉश समिति में बाहरी सदस्य सक्रिय हो तो महिला शिकायतकर्ता के मन में एक भरोसा जागता है कि उनकी बात को गम्भीरता से सुना जाएगा और उन्हें न्याय भी मिलेगा।

यदि आप विभिन्न अदालतों में पहुँचे पॉश समिति सदस्यता सम्बन्धी मामलों पर नज़र डालेंगे तो पाएँगे कि अनेक उदाहरणों में बाहरी सदस्यों की नियुक्ति में विविध संस्थानों ने गाइडलाइन्स का पालन नहीं किया है।

एक्ट की मंशा तो अच्छी ही है लेकिन पॉश समिति बनाने वाले संस्थान यदि अपने हिसाब से चलने वाला बाहरी सदस्य खोज लेते हैं तो ऐसी समिति के संवेदनशील होने और उनके द्वारा न्याय देने की सम्भावना भी न्यून होती जाती है।

सदस्यों का उन्मुखीकरण

चूँकि समिति में अलग-अलग योग्यताओं-क्षमताओं के सदस्य होते हैं इसलिए एक्ट की बारीकियों को जानना, समिति के सदस्यों की अलग-अलग भूमिकाओं को समझना, समिति की प्रोसीडिंग्स को जानना, बिना दबाव के अपनी बात को समिति

के सामने रख सकना, शिकायतकर्ता पर भरोसा जताना और शिकायत को समिति तक लाना – ये मुद्दे प्रशिक्षण का हिस्सा होने चाहिए। इससे सभी सदस्यों को एक स्तर पर लाने और साझा समझ विकसित होने में काफी हद तक मदद मिल सकती है।

मुझे याद पड़ता है कि एक संस्था में पॉश समिति के सदस्यों के ओरिएंटेशन के लिए सारी पठन सामग्री अँग्रेज़ी भाषा में थी, जिसे पढ़कर समझ पाने में उस समिति के केवल दो-तीन सदस्य ही सक्षम थे। अन्य सदस्य उसे समझने में काफी परेशानी महसूस कर रहे थे। इन हालातों में पठन सामग्री का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध करवाना बेहतर होता है। दूसरी बात, जो साथी अँग्रेज़ी सामग्री को पढ़ने में सक्षम हैं, वे अन्य साथियों को उस सामग्री के बारे में बता सकते हैं और सब मिलकर साझा विमर्श कर सकते हैं।

किसी संस्था की एक महिला साथी से मेरी बात हो रही थी। (हालाँकि वो पॉश समिति की सदस्य नहीं थीं) उनकी बातों से बार-बार झलक रहा था कि वे महिलाओं की शिकायतों के लिए खुद महिलाओं को ही कटघरे में खड़ा कर रही थीं। मसलन, ऐसे तंग और छोटे कपड़े क्यों पहनती हैं, टू-व्हीलर किसी पुरुष साथी से ही क्यों सीखना है, पुरुषों के साथ इतना हँसी-मज़ाक क्यों करती हैं, पुरुषों के साथ रूम शेयर ही क्यों करना है, इतने सीनियर पुरुष साथी हैं – वे ऐसा क्यों करेंगे, इन यंग लड़कियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता, इसी से तो पुरुषों को और आगे बढ़ने का हौंसला मिलता है आदि। ऐसी ही कुछ बातें पुरुष साथियों के मुँह से भी सुनने को मिलती हैं। सोचिए, यदि न्याय देने वाली समिति में भी इतनी संकीर्ण सोच रखने वाले पुरुष या महिलाएँ हों तो न्याय कैसे मिलेगा? यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना ज़रूरी है कि कई संगठनों में पॉश समिति में महिला और पुरुष, दोनों ही शामिल होते हैं और कई बार कोई घटना पुरुष सदस्यों को सामान्य या महत्वहीन लग सकती है, लेकिन सम्भव है कि वो घटना महिला सदस्यों के लिए इतनी सामान्य (केज़ुअल) न हो। इसलिए संस्थाओं को पॉश समिति के सदस्यों के साथ-साथ सामान्य सदस्यों का ओरिएंटेशन भी बार-बार करवाना ज़रूरी है ताकि वे सन्तुलित तरीके से सोचना सीख सकें और शिकायतों के प्रति ज़्यादा संवेदनशील बन सकें। अपनी महिला सहकर्मियों की शिकायतों को एक वाजिब मुद्दे के रूप में देखें, न कि उन्हें गॉसिप या मनोरंजन का विषय समझें।

कई दफा पॉश समिति में जिस पुरुष साथी के खिलाफ शिकायत आती है, उनकी कुछ महिला व पुरुष सहकर्मी भी पॉश समिति के सदस्य

होते हैं। उनके मन में अपने पुरुष साथी के प्रति जो स्नेह-आदर का भाव होता है, उस वजह से वे शिकायत को वाजिब मानने के लिए आसानी-से तैयार नहीं होते या सज़ा तय करते समय एकदम हल्के दण्ड की पैरवी करते हैं। इसी तरह यदि किसी प्रभावशाली पुरुष साथी के खिलाफ शिकायत आती है, तब तो शिकायतकर्ता को न्याय दिलवा पाना खासा दूभर हो जाता है।

ऐसा ही एक उदाहरण याद आता है जब किसी संस्था के एक साथी ने पॉश के कार्यक्षेत्र को लेकर अपनी स्पष्टता के बारे में एक किस्सा साझा किया था। हुआ कुछ यूँ कि शिकायतकर्ता एक तलाकशुदा महिला थी जो फ्रीलांसर के तौर पर कार्य करती थी जिसे उस संस्था के कुछ वरिष्ठ साथी काम देते थे। काम देने वाले साथी अक्सर काम में मदद करने के बहाने उस शिकायतकर्ता के घर पहुँच जाते थे। वहाँ वे उसके अकेले होने, जवान होने व कुछ ज़रूरतें होने की बात करने लगते थे। शिकायतकर्ता ने सम्बन्धित संस्था में शिकायत दर्ज करवाई। इस पर चर्चा करते हुए एक महिला सदस्य का कहना था कि फ्रीलांसर को भले ही हम काम देते हैं लेकिन वह हमारी कार्यकर्ता नहीं है। यह सब हमारे कार्यालय में नहीं हो रहा है, तो हम इसे एक वाजिब शिकायत क्यों मानें? अन्य सदस्यों से चर्चा के बाद स्पष्ट हुआ कि शिकायतकर्ता की शिकायत एक वाजिब शिकायत थी। इस किस्से को सुनने के बाद ऐसा लगता है कि कार्यस्थल से क्या आशय है, और किसे शिकायतकर्ता माना जा सकता है, जैसे मुद्दों पर गहराई से चर्चा होगी तो समिति के सदस्यों की समझ इस मुद्दे पर बढ़ती जाएगी।

कुछ शिकायतें ऐसी परिस्थितिजन्य हो सकती हैं जो समिति सदस्यों को सोचने और अपनी समझ को पुख्ता करने का मौका दे दें। ऐसा ही एक और वाकया मुझे याद आता है जब एक महिला ने शिकायत दर्ज करवाई थी और उसके बाद वे उस संस्था को छोड़कर किसी अन्य संस्था में चली

गईं। ऐसी स्थिति में, क्या शिकायतकर्ता की शिकायत पर अभी भी जाँच-पड़ताल होनी चाहिए या केस वहीं खत्म हो जाना चाहिए?

एक और सवाल - यदि किसी शिकायत को वाजिब मानकर स्वीकारा गया हो, दोनों पक्षों के बयान दर्ज हो गए हों व 90 दिन का निर्धारित समय भी बीत चुका हो; और फिर उसके बाद इस फोरम के बाहर दोनों पक्षों में समझौता हो गया हो जिसकी सूचना समिति को दे दी गई हो, ऐसी स्थिति में पॉश समिति को क्या करना चाहिए?

एक काल्पनिक सवाल आपके सोचने के लिए – यदि किसी संस्थान में सभी 30 कार्यकर्ता महिलाएँ ही हैं तो क्या उस संस्थान में पॉश समिति की ज़रूरत एवं बाध्यता है?

ये सारे सवाल इसलिए उठते हैं क्योंकि यदि सदस्यों का उन्मुखीकरण बेहतर तरीके से किया गया होगा तो ऐसे सवालों पर निष्पक्ष और सामूहिक राय कायम की जा सकेगी। अन्यथा, समिति के किसी प्रभावशाली व्यक्ति की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर राय कायम होने लगती है।

समिति की जानकारी देना

आम तौर पर संस्थान के कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर पोस्टर चस्पा कर दिया जाता है जिसमें सभी कार्यकर्ताओं को संस्थान में पॉश समिति के होने की जानकारी दी जाती है, साथ ही उसमें समिति के सदस्यों के नाम, फोन नम्बर और ईमेल आईडी भी दिए जाते हैं। यौन शोषण से सम्बन्धित पोस्टर भी चस्पा कर दिए जाते हैं। लेकिन यौन उत्पीड़न की श्रेणियाँ, लैंगिक संवेदनशीलता, कार्यक्षेत्र का माहौल सबके लिए सहज हो, इसके लिए कार्यकर्ताओं के साथ सामूहिक चर्चाएँ, फिल्म शो दिखाना, एवं विभिन्न अन्य गतिविधियाँ करवाना आदि भी बहुत ज़रूरी लगता है ताकि कार्यकर्ता इन सबके प्रति संवेदनशील हो सकें। अन्य संस्थाओं की पॉश समिति के सदस्यों से उनके अनुभवों को जानना भी एक अच्छा तरीका हो सकता है। इससे यह जानने का मौका मिलता है कि बाहरी दुनिया में क्या हो रहा है और उसके आधार पर संस्थान के सिस्टम को चुस्त-दुरुस्त किया जा सकता है।

एक बार एक संस्था के कुछ महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं से मेरी बातचीत हो रही थी। मैंने यूँ ही उनसे पूछ लिया, "क्या आपका पॉश समिति सम्बन्धी ओरिएंटेशन हो गया है?" कुछ साथियों ने बताया कि "हाँ, हुआ है। हमें पॉश एक्ट के बारे में बुनियादी जानकारी दी गई है। हमारी संस्था की समिति के आन्तरिक सदस्यों के नाम और फोन नम्बर भी हमें दिए गए हैं।" एक साथी का कहना था कि कोई पठन सामग्री वगैरह नहीं दी गई है और बाद में कोई जागरूकता

सम्बन्धी प्रयास भी नहीं किए गए हैं। हालाँकि, संस्था की वेबसाइट पर साल में दो-तीन कार्यशालाएँ करवाने और इन कार्यशालाओं में यौन शोषण, पितृसत्ता, यौनिकता, मर्दानगी, भारत में महिलाओं की संगठित क्षेत्र में कामकाजी भूमिका जैसे मुद्दों पर समझ बनाने की बात लिखी हुई है। जिन साथियों से मेरी बातचीत हो रही थी, उनको इस बात का बिलकुल भी गुमान नहीं था कि पॉश समिति को भारत शासन द्वारा काफी न्यायिक अधिकार मिले हुए हैं। इसी तरह उन्हें इस उद्देश्य को समझना भी बाकी था कि पॉश समिति किस तरह महिलाओं के संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है।

ऐसे हालात में पॉश समिति संस्थानों के भीतर काम और व्यवहार का सहज माहौल बनाने में अपेक्षित भूमिका नहीं निभा पाती।

चुस्ती और तटस्थ काम की अपेक्षा

एक संस्था की महिला कार्यकर्ता का कहना था कि किसी शिकायत के आने के बाद तयशुदा समयावधि में शिकायत को स्वीकार करना, बयान लेना, जाँच-पड़ताल करना और केस सम्बन्धित फैसला या अनुशंसा संस्था प्रमुख को भेजना, पॉश समिति की प्रमुख ज़िम्मेदारी है। इससे प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को भी बल मिलता है कि समय पर मिला न्याय ही न्याय है।

किसी एक अन्य संस्था की महिला साथी से जब मैंने पॉश समिति के कामकाज को लेकर उनकी राय जानना चाही तो उन्होंने दुखी स्वर में बताया, “हमारी संस्थान की कुछ महिला और पुरुष साथियों ने इस्तीफा देकर संस्थान छोड़ दिया। हम बस कयास ही लगा सकते हैं कि जिस तरह के न्याय की उन्हें दरकार थी, शायद वो पॉश समिति से नहीं मिला।”

एक अन्य संस्था की महिला कार्यकर्ता ने बताया कि उनकी शिकायत पॉश समिति के एक पुरुष सदस्य के व्यवहार को लेकर थी। उनको यह मनवाने में ही काफी मशक्कत करनी पड़ी कि उनकी शिकायत एक वाजिब शिकायत है।

न्याय भी और सहयोग भी

कुछ संस्थानों में शिकायत स्वीकार करने के बाद महिला शिकायतकर्ता को कई स्तरों पर सपोर्ट दिया जाता है। जैसे, महिला साथी को केस वापस लेने के दबाव का सामना करने में मदद देना, यह सुनिश्चित करना कि शिकायत के चलते महिला के स्वास्थ्य पर प्रभाव न पड़े और शिकायत करने के बाद महिला साथी को कार्यस्थल पर ‘दिक्कत खड़ी करने वाली साथी’ के रूप में टैग करना या बायकॉट करना जैसी स्थितियों का सामना न करना पड़े। साथ ही, इसका भी विशेष ध्यान रखा जाता है कि उन्हें

काम करने या ज़िम्मेदारी लेने के मौकों से महरूम न रखा जाए। कई बार ज़रूरत पड़ने पर मनोचिकित्सक द्वारा उनकी काउंसलिंग भी करवाई जाती है।

इसी तरह, यदि पुरुष साथी के खिलाफ कार्रवाई होने के बाद उस पुरुष साथी की सेवाएँ संस्थान में जारी रहने वाली हैं तो ऐसी स्थिति में उस पुरुष साथी को भी ग्लानि-पछतावे या अपमान से बाहर निकलने में मदद की ज़रूरत होती है। न्याय और सज़ा के साथ-साथ व्यक्ति में सुधार हो, यह भी ज़रूरी है। इसलिए कुछ संस्थाएँ पुरुष साथी को काम में पहले की तरह सपोर्ट करना, पूर्ववत काम देते रहना या ज़रूरत पड़ने पर मनोचिकित्सक द्वारा काउंसलिंग करवाना जैसे उपाय करती हैं। किसी शिकायतकर्ता महिला साथी या पुरुष साथी पर टैग लगाना या बायकॉट करना जैसी चीज़ें न हों, इसके लिए भी संस्थानों में यथेष्ठ प्रयास किए जा सकते हैं।

लैंगिग उत्पीड़न की अन्य सम्भावनाएँ

चूँकि विशाखा गाइडलाइन्स की शुरुआत एक बलात्कार केस के साथ हुई थी इसलिए समिति का फोकस अक्सर महिलाओं के साथ कार्यस्थल पर हो रहे छोटे-बड़े, सभी तरह के यौन शोषण को रोकने पर होता है। लेकिन इस विषय पर भी सोच-विचार ज़रूरी है कि दरअसल कोई भी व्यक्ति यौन उत्पीड़न का शिकार हो सकता है।

LGBTQIA समुदाय के यौन उत्पीड़न की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता और यह समुदाय अभी इतने मुखर रूप से अपने शोषण की बात को साझा भी नहीं कर पाया है। इसलिए शासकीय या अशासकीय संगठनों को अपनी नीतियों में स्पष्ट रूप से कह देना चाहिए कि वे किसी भी लिंग के रूप में पहचान रखने वाले अपने कार्यकर्ताओं का यौन उत्पीड़न बर्दाश्त नहीं करेंगे। हालाँकि, अभी ये सभी मामले पॉश समिति के दायरे से बाहर हैं। ऐसे में संस्थाओं को अपने सामान्य निर्णायक फोरम पर ही ऐसी शिकायतों को लेना, सुनवाई करना और फैसले लेने के काम करने चाहिए।

* * *

एक निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विशाखा गाइड लाइन के आने के बाद कार्यस्थल पर महिलाओं को एक कानूनी सम्बल मिला और कई पुरुष साथी जो जाने-अनजाने में सहजता की सीमारेखा पार कर जाते थे, उनमें भी संयम बढ़ा है। कार्यस्थल से महिला कार्यकर्ताओं की ओर से आने वाली विविध शिकायतें पॉश समिति को भी सोचने और काम करने की दिशा देती हैं। ये शिकायतें समिति की सोच का दायरा भी बढ़ाती हैं और व्यक्ति को न्याय

स्थानीय समिति - असंगठित क्षेत्र के लिए पॉश समिति

इस लेख में संगठित क्षेत्र के कई उदाहरण देकर उनसे सम्बन्धित समितियों के कामकाज पर काफी चर्चा की गई, लेकिन असंगठित क्षेत्र के बारे में अभी तक कुछ भी नहीं कहा गया है। एक बार सोचकर देखिए - विधान सभा, कमिश्नर ऑफिस, कलेक्टर ऑफिस, तहसील कार्यालय, ज़िला अस्पताल, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, विविध मंत्रालय, खेल प्राधिकरण, नगरपालिका... यह फेहरिस्त और भी लम्बी हो सकती है। इनमें से अधिकांश में पॉश समिति का गठन किया जा चुका है।

अब एक दूसरी सूची पर भी ध्यान दीजिए - खेत, कंस्ट्रक्शन साइट, ईंट भट्टे, छोटे नर्सिंग होम, दुकानें, होटल, रेस्टोरेंट, मॉल, सब्ज़ी मण्डी... इत्यादी जगहों पर तरह-तरह के काम करने वाली महिलाएँ अपनी शिकायत कहाँ दर्ज करवा सकती हैं? (यह शिकायत उनके सहकर्मी पुरुष साथियों के अलावा उनके नियोक्ता के खिलाफ भी हो सकती है।) इस बात को याद रखना भी ज़रूरी है कि उपरोक्त में से कई कार्यस्थलों में 10 से कम कार्यकर्ता होने पर, वहाँ पॉश समिति बनाने की बाध्यता खत्म हो जाती है। ऐसी स्थिति में जब कोई आन्तरिक समिति न हो तो वहाँ 'स्थानीय शिकायत समिति' को शिकायत सौंपनी होती है। सन् 2016 में, स्थानीय शिकायत समिति का नाम बदलकर 'स्थानीय समिति' कर दिया गया था। साथ ही, उसके काम का दायरा भी बढ़ाया गया ताकि उसमें शिकायतों का निवारण करने से आगे जाकर, जागरूकता बढ़ाना भी शामिल हो सके।

कुछ अध्ययनों से यह तथ्य भी सामने आया है कि असंगठित क्षेत्र में कार्यरत ज़्यादातर लोगों को स्थानीय समिति के बारे में जानकारी नहीं होती और पुलिस थाने में अपनी शिकायत दर्ज करवाना ही उन्हें एक विकल्प दिखाई देता है।

आम तौर पर, ज़िला स्तरीय स्थानीय समिति में ज़िलाधीश प्रमुख होते हैं। तहसील या ब्लॉक स्तर पर, ज़िलाधीश द्वारा नियुक्त नोडल अधिकारी होते हैं जो किसी भी शिकायत को सात दिनों के भीतर स्थानीय समिति के समक्ष पहुँचाने के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। स्थानीय समिति की एक खास बात यह है कि इसमें गैर-शासकीय संगठनों के भी दो सदस्य मनोनीत होते हैं।

स्थानीय समितियों को अपनी वार्षिक रिपोर्ट बनानी होती है जिसमें गोपनीयता बरतते हुए प्रमुख रूप से यह बताना होता है कि

- कितनी शिकायतें प्राप्त की गईं।
- कितनी शिकायतों पर फैसला हुआ।
- कितनी शिकायतें लम्बित हैं (जिनमें 90 दिन से ज़्यादा समय बीत गया हो)।
- कितने जागरूकता सत्र आयोजित किए गए।
- अधिकारी द्वारा लिए गए फैसलों की प्रकृति क्या रही।

पॉश एक्ट, 2013 के तहत चूँकि काफी गोपनीयता बरती जाती है इसलिए आन्तरिक शिकायत समिति या स्थानीय शिकायत समिति के समक्ष आने वाली शिकायतों की प्रकृति कैसी थी, फैसलों में कितनी न्याय संगतता थी, क्या शिकायतकर्ता न्याय से सन्तुष्ट हुआ जैसी बातें कभी भी पता नहीं चलतीं। इसलिए पॉश समिति के कामकाज और न्यायिक प्रक्रिया की गहराई से समीक्षा करना, एक बेहद कठिन काम है।

और सुधार के मौके मिलें, यह भी सुनिश्चित करती हैं।

अभी भी पॉश समिति द्वारा न्याय न मिलने या किन्हीं बातों की अनदेखी करने पर सम्बन्धित व्यक्ति अदालत पहुँचते हैं। आशा करना चाहिए कि पॉश समितियाँ भी अपने दायित्वों को बखूबी निभाएँगी और आने वाले समय में कार्यक्षेत्रों में और भी बेहतर हालात बनेंगे।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।
सभी चित्र: प्रभाकर डबराल: पेशे से एक चित्रकार, प्रकृति प्रेमी, कहानीकार और डिज़ाइन शिक्षक हैं। लोगों की उत्पत्ति की कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं। *एकलव्य* की बाल विज्ञान पत्रिका *चकमक* के लिए स्वतन्त्र चित्रकारी करते हैं। समानुभूति, करुणा और आत्म-साक्षात्कार फैलाने में सहायक बनकर अपने जीवन को जीने लायक बनाना चाहते हैं।

छिपा हुआ तारा

जयंत विष्णु नारलीकर

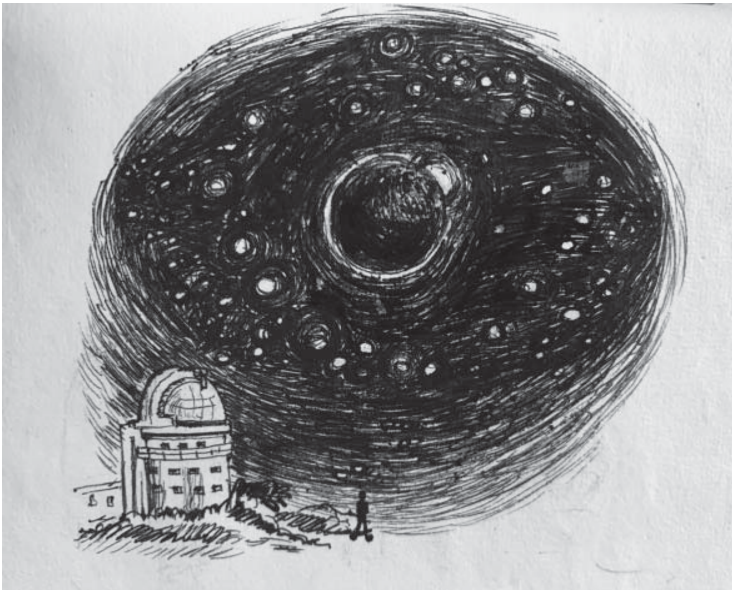

राजेश की वैन कावलूर की ओर दौड़ रही थी। बंगलुरु शहर पीछे छूट गया था परन्तु उसका मन अभी भी बंगलुरु में ही अटका था। दरअसल आज शाम, उसकी संस्था में विख्यात वैज्ञानिक तथा खगोल विज्ञान के जाने-माने प्रोफेसर रिचर्ड स्मिथ का व्याख्यान आयोजित किया गया था। बंगलुरु स्थित उस संस्था के संस्थापक वेणू बाप्पूजी की स्मृति में प्रतिवर्ष किसी एक विख्यात खगोलविद् का व्याख्यान आयोजित करने की प्रथा है। इस बार उसके आग्रह पर एवं अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप, स्मिथसाहब ने संस्था में आने का वायदा किया था। व्याख्यान का विषय भी उसी की पसन्द का था।

'आकाशगंगा के तारों की भ्रमण कक्षा' विषय पर उसका अपना अनुसन्धान था तथा वह वक्ताओं से प्रत्यक्ष चर्चा भी करना चाहता था।

परन्तु आज का अवसर चूक गया...

सुबह की तमाम घटनाएँ राजेश के दिमाग में घूमने लगीं... सुबह साढ़े सात बजे संस्था के संचालक का फोन... कावलूर की बड़ी दूरबीन में आई खराबी की खबर... ऑप्टिक्स तथा इलेक्ट्रॉनिक्स की तकनीक में बिगड़ा आपसी तालमेल... उसे क्या वहाँ जाकर ठीक करना सम्भव है, अन्य वैज्ञानिकों की मदद लेकर वह क्या कुछ कर सकता है, इसकी पूछताछ आदि आदि।

अपने विगत अनुभव से राजेश ने जान लिया था कि पूछे जाने का मतलब, आज्ञा मानना है। कावलूर की नब्बे इंच वाली दूरबीन महज़ दूरबीन न होकर अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों का एक महत्वपूर्ण केन्द्रस्थान थी। इन्हीं साधनों पर उसकी कार्यक्षमता निर्भर करती थी। इन सबका ज्ञान तथा सर्वाधिक जानकारी राजेश के अलावा किसी और के पास न थी।

"आज की बजाय कल चलेगा क्या? मुझे रिचर्ड स्मिथ का व्याख्यान सुनना था और चर्चा करनी थी।" उसने दबी ज़बान से कहा भी, परन्तु संचालक महोदय भी असहाय थे। बोले, "कल प्रोफेसर स्मिथ स्वयं दूरबीन देखने आएँगे, तब तुम चर्चा कर लेना।"

इसी आश्वासन पर सन्तोष करके राजेश ने कावलूर जाने की तैयारी कर ली। साथ में अपने अनुसन्धान के शोध लेख भी रख लिए।

"कहाँ खो गए राजेश भाई? पिछले आधे घण्टे से देख रहा हूँ, एक शब्द नहीं निकला है।" बृजेश ने उसे छेड़ा। वह एक इलेक्ट्रॉनिक तंत्रज्ञ था।

राजेश विचारों की दुनिया से बाहर आया। उसने पूछा, "क्या बिगड़ा होगा दूरबीन में? क्या ख्याल है तुम्हारा? मध्य रात्रि से पहले दुरुस्त हो जाएगा क्या, ताकि मैं निरीक्षण करके उसे जाँच सकूँ?"

"वह हवलदार बड़ा डरपोक आदमी है। ज़रा कहीं गड़बड़ी हुई कि तुरन्त बंगलुरु फोन करेगा। मेरे हिसाब से मामूली गड़बड़ होगी पर वह डरता है, छोटी-सी ज़िम्मेदारी से भी!" बृजेश ने कहा।

राजेश भी हँसते हुए बोला, "इसमें दोष तुम्हारा भी है, बृजेश। हमेशा अपने हाथों चम्मच से खिलाते रहते हो उसे, तब वह क्यों करेगा कोई कोशिश भला?"

"ठीक है, आज उसी से करवा लेता हूँ सारा। मेरी सिर्फ निगरानी होगी।"

"बिग ब्रदर इज़ वॉचिंग यू।" राजेश बुदबुदाया।

कावलूर की चढ़ान आने तक वैन में शान्ति थी। अपने-अपने विचारों में खोए थे दोनों।

"सौभाग्य से आज आकाश साफ है," बृजेश बोला।

"हाँ। इतनी दूर आ गए हैं, कम-से-कम कुछ तस्वीरें ले सकूँगा मैं।" राजेश

ने कहा। फिर से बृजेश ने पूछा, “तुमने तो तय कर लिया होगा कि कैसे क्या करना है! मैं भी रुक जाऊँ... इन नज़ारों का आनन्द लेने के लिए?”

“अवश्य! यदि बीच में कोई गड़बड़ी आ जाती है, तब तुम्हारी मदद भी मिलेगी। लेकिन, यह तभी सम्भव होगा जब तुम और तुम्हारे सहकर्मी अपना सम्पूर्ण काम समय पर समाप्त कर लेंगे।”

“इसकी चिन्ता मत करो! इस दूरबीन की रचना ही कुछ ऐसी है कि उसे ठीक करने में कोई परेशानी नहीं होती।”

इतने में अचानक वैन झटके से रुक गई। ड्राइवर ने ज़ोर-से ब्रेक लगाए थे। क्या बात है, देखने के लिए दोनों ने खिड़की से झाँका। एक बहुत बड़ा नाग रास्ते को पार कर गया।

“चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।” बृजेश बुदबुदाया।

“चन्दन के वृक्ष हैं तब साँप तो होंगे ही। इसी वजह से रात में यहाँ आने से डरता हूँ, बृजेश! पर चन्दन का यह परिसर है बड़ा ही रमणीय।” राजेश बोला।

चन्दन के वृक्षों की ओट से दूरबीन दिखाई दे रही थी। ढलते सूरज में पहाड़ी तले का परिसर, किसी तस्वीर की भाँति अद्‌भुत एवं रमणीय था। राजेश जब भी कावलूर आता, प्रकृति की सुन्दरता उसे मोहित कर जाती।

“पहले किस ओर जाना है?” ड्राइवर ने पूछा।

“मुझे तथा मेरे साथियों को पहले बड़ी दूरबीन के पास छोड़ देना और बाद में राजेश साहब को गेस्ट हाउस ले जाना।” बृजेश ने कहा।

“बृजेश, तुम भी मेरे साथ पहले गेस्ट हाउस चलो। बढ़िया चाय पिएँगे, फिर तुम अपना काम करते रहना।” राजेश ने कहा।

बृजेश ने मना कर दिया। बोला, “नहीं! पहले दूरबीन ठीक कर लूँ, फिर दूसरी बातें... यदि मेरा काम समय से हो गया तो मैं नौ बजे खाने के लिए हाज़िर हो जाऊँगा।”

बृजेश से राजेश को यही उम्मीद थी। दूरबीन के इलेक्ट्रॉनिक्स की पूरी ज़िम्मेदारी उसने सम्पूर्ण तौर पर स्वीकार ली थी। उस काम में किसी प्रकार की गड़बड़ी वह सह नहीं पाता था।

हनुमन्त हवलदार की भी यही अपेक्षा थी। दूरबीन के प्रवेशद्वार के पास वह बेसब्री से चहलकदमी कर रहा था। बृजेश तथा उसके सहकर्मियों को प्रवेशद्वार के पास छोड़कर राजेश गेस्ट हाउस चला गया।

चाय पीते हुए उसने अपने खोज -कार्य की फाइल निकाली। उसे तय करना था कि आज रात किन खगोल प्रेक्षणों की जाँच करनी है।

जाँच के लिए उसने कुछ तारकीय क्षेत्रों को चुना। पहले किए गए प्रेक्षणों की तुलना वह आज की जाँच के अवलोकनों से करेगा और यदि वे दोनों एकजैसे सिद्ध होते हैं तो दूरबीन पूर्णतया ठीक हो गई, इसकी पुष्टि हो जाएगी।

“क्या कोई नई परियोजना लाए हो?” चालीस इंच वाली दूरबीन पर काम कर रहे उसके सहकर्मी ने पूछा।

“नया कुछ भी नहीं। सिर्फ जाँच करनी है। नब्बे इंच वाली दूरबीन में कुछ खराबी आ गई है, उसे दूर करना है। केवल जाँच में क्या नया हाथ लगेगा भला?” अँगड़ाई लेते हुए राजेश ने कहा।

पर, उसका यह कथन गलत सिद्ध होने वाला था।

बृजेश तथा उसके सहकर्मियों ने नब्बे इंच वाली दूरबीन में आई खराबी को दूर किया तब रात के नौ बजे थे।

“एस्ट्रोनॉमार साहब, अब आपकी बारी है।” गेस्टहाउस के डाइनिंग हॉल में प्रवेश करते हुए बृजेश ने कहा।

“क्या खराबी काफी जटिल थी?” राजेश ने पूछा।

“अधिक तो न थी परन्तु नई जगह में थी। दरअसल, मेरा काम आधे घण्टे पहले ही खत्म हो गया होता, पर इस बार हनुमन्त से सारा कुछ करवाया, यानी खराबी ढूँढने से लेकर उसकी मरम्मत तक का सारा काम उसी से करवाया। लगता है, इतने से उसके अन्दर आत्मविश्वास बढ़ गया है!”

“शाबाश मेरे पट्ठे! चलो, खाने के बाद जाँच आरम्भ करेंगे।” राजेश ने घण्टी बजाकर खाना लगाने की सूचना दे दी।

खाना खाने के बाद, आवश्यक दस्तावेज़ लेकर दूरबीन के कक्ष में पहुँचते-पहुँचते साढ़े दस बज गए। ऊपर आसमान साफ था। अमावस बीत गई थी सो आकाश में चन्द्रमा

का प्रकाश नहीं था - यानी खगोल प्रेक्षणों के लिए आदर्श समय एवं अवसर। राजेश ने इच्छित जानकारी को कंप्यूटर में भर दिया। आदेश के अनुसार, दूरबीन की नली आकाश की ओर मुड़ी। पहले खगोल वैज्ञानिक नली में से देखकर तारकीय अभ्यास करते थे। आगे चलकर मानव चक्षुओं का कार्य फोटोग्राफिक प्लेट ने सँभाला। जैसे-जैसे तकनीक में सुधार होता गया, प्लेट का काम भी नहीं रहा। इमेज ट्यूब और फोटो मल्टिप्लायर आए। अब सी.सी.डी. तथा उससे जुड़ा कंप्यूटर आ गया।

आज के खगोल वैज्ञानिक नली की बजाय, सीधे टी.वी. के पर्दे पर कंप्यूटर द्वारा छपे आँकड़ों का अवलोकन एवं अभ्यास करते हैं। साथ ही, आकाश के उन पिण्डों के मानचित्र या आधुनिक प्रतिबिम्ब, अपने इच्छित रंगों में तैयार करवाते हैं जिनको फोटो में उतारना मुश्किल है। खगोलविज्ञान के अभ्यास हेतु दूरबीन को इस्तेमाल करने वाला गैलीलियो यदि इन नए उपकरणों को देखता, तो चकित रह जाता और आनन्द विभोर हो, नाचने लगता।

टी.वी. के सामने बैठते हुए राजेश ने पूछा, “सी.सी.डी. कैमरा ठीक से फिट किया है न?”

“हाँ, वह ठीक से काम कर रहा है। तुम गणकयंत्र को आदेश दो!” राजेश ने कंप्यूटर को उसकी सांकेतिक भाषा में अपेक्षित आदेश दिए। कंप्यूटर ने उन्हें स्वीकार लिया और तुरन्त तस्वीरें लेने का कार्य सुचारू रूप से शुरू हो गया। बृजेश को खगोल विज्ञान की थोड़ी जानकारी थी। उसने पूछा, “तुमने किस प्रकल्प को चुना है?”

“मैं अपने नज़दीकी तारकों के समूह का अभ्यास कर रहा हूँ। उनके चार्ट मेरे पास हैं। पुरानी पालोमार वेधशाला द्वारा तैयार की गई प्लेटें भी हैं, उन्हीं की तुलना कर रहा हूँ।”

“कुछ दशकों के बाद तारे अपना स्थान बदलते हैं न?” बृजेश ने पूछा।

“हाँ। आकाशगंगा में घूमते हुए उनकी दिशा बदल जाती है, पर सामान्य दूरबीन से यह बदलाव दिखता नहीं है। अतिसूक्ष्म मापन करने वाली दूरबीन द्वारा यह फर्क आँका जा सकता है। पहले किए गए अवलोकनों की तुलना यदि बरसों बाद लिए गए आँकड़ों से की जाए, तब उनकी स्थिति के फर्क को जाना जा सकता है। इसके अलावा तारों के युगलों की गति को अन्य तरीकों से भी जाना जा सकता है।” राजेश बोला।

“जब तारों के किसी युगल के दोनों तारे एक-दूसरे के चारों ओर घूमते हैं, यानी भ्रमण करते हैं, तब उनकी दिशा में बदलाव आता होगा?”

“अवश्य आता होगा। परन्तु यदि, दोनों के बीच का अंतर बहुत कम है तो वह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं

देता। परन्तु हाँ, डॉप्लर प्रभाव से उनकी गति को यहाँ से भी नापा जा सकता है।” राजेश ने समझाया।

बृजेश को डॉप्लर प्रभाव की जानकारी थी। यदि हम स्टेशन पर खड़े हों और सीटी बजाती हुई एक ट्रेन, तेज़ी-से सामने से गुज़रती है तो पहले ट्रेन हमारी ओर आती है। उस समय इंजन की सीटी का स्वरमान बढ़ा हुआ होता है और सीटी तीखी सुनाई देती है। ट्रेन के गुज़रने पर स्वर का तीखापन कम होता जाता है। स्वर तंरगों का यह गुण जिस प्रकार से ध्वनि पर लागू होता है, ठीक उसी तरह वह प्रकाश के सन्दर्भ में भी पाया जाता है। तारा युगल के, हम से दूर जा रहे तारे के प्रकाश से निकलने वाली लहरों की लम्बाई बढ़ जाती है, और पास आते तारे की प्रकाश तरंगें छोटी होती दिखाई देती हैं।

कंप्यूटर की मेमॉरी में तारों का मानचित्र भरा हुआ था। आकाश के किसी भी क्षेत्र के नियत रोशनी से अधिक तेजस्वी तारों की जानकारी, जो पहले के प्रेक्षणों द्वारा तैयार की गई थी, कंप्यूटर की स्मृति में भी उपलब्ध थी। उस जानकारी के आधार पर राजेश नई जानकारी की कंप्यूटर द्वारा जाँच करवा रहा था। राजेश ने बताया, “हर्शल पिता-पुत्र ने तारों के प्रेक्षणों को क्रमबद्धता से दर्ज किया था। आधुनिक खगोलज्ञों को आज उपलब्ध साधन, उनके पास कदापि नहीं थे। जिस प्रकार से कोलम्बस ने परिस्थिति से जूझते हुए अटलांटिक महासागर को पार किया, उसकी तुलना आज के आरामदेह जहाज़ों से होने वाले प्रवास से नहीं हो सकती, ठीक वही बात खगोलज्ञों के बारे में भी कही जा सकती है।”

“एक बात कहूँ, राजेश! नाराज़ मत होना।” बृजेश बोला।

“बोलो! तुम्हें भय है!” हँसते हुए राजेश ने कहा।

“सिर्फ खगोल विज्ञान ही नहीं, राजेश! विज्ञान की किसी भी शाखा पर नज़र डालो। यह तथ्य सामने आता है कि सौ, दो सौ साल पहले जिन कठिन परिस्थितियों में तब के वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान किया, उसकी तुलना में आज के वैज्ञानिक की परिस्थिति में बहुत बदलाव आया है। आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विस्तृत अनुसन्धान के लिए बहुत सारा पैसा जाता देखकर मुझे भी ऐसा लगने लगा है कि पहले-सी लगन अब नहीं रही। आज का वैज्ञानिक बड़े लाड़-प्यार की अपेक्षा रखता है।”

“तुम्हारी बात 99 प्रतिशत वैज्ञानिकों के लिए सच मानता हूँ। परन्तु आज भी कुछ वैज्ञानिक ऐसे हैं जो अपने काम में पूरी लगन से जुटे हैं। अन्य व्यर्थ की बातों के मोह को टालते हुए, ऐसे लोग ही इस रथ को आगे ले जा रहे हैं। बाकी तो निकम्मों का जमघट ही है...”

"वहाँ देखो, राजेश..." अचानक बृजेश चीखा।

कंप्यूटर की लाल बत्ती इशारा दे रही थी, ध्यान देने के लिए!

उस लाल बत्ती के नीचे लिखा था 'तारा नम्बर 1141+7914 गायब है। बाकी सभी तारे यथास्थान हैं।

* * *

"मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा! तारा कैसे अदृश्य होगा भला?" रिचर्ड स्मिथ चकित हो बोले। जैसे ही वे कावलूर पहुँचे, पिछली रात का सारा विवरण राजेश ने उन्हें दिया। राजेश जिन मुद्दों पर उनसे चर्चा करना चाहता था, वह बात तो एक ओर रही; पिछली सारी रात राजेश सिर्फ अदृश्य तारे के बारे में ही सोचता रहा।

"प्रोफेसर स्मिथ..."

"सिर्फ रिचर्ड कहो।" उन्हें आदरसूचक सम्बोधन पसन्द न था।

"रिचर्ड आज रात तुम खुद देख लेना... कल के कंप्यूटर रिकॉर्ड्स तुम्हें अभी दिखाता हूँ।"

टी.वी. की स्क्रीन पर पिछली रात का सारा माजरा राजेश ने उन्हें दिखाया। वह सब देखकर रिचर्ड स्मिथ दंग रह गए। उन्होंने राजेश की ओर देखा जो बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोक पा रहा था।

"वाह! बच्चू लगता है इस समस्या का हल खोज लिया है तुमने।"

"रिचर्ड, सारी रात विचार करने पर मैंने कुछ कारण खोजा है। पर, मैं तुम्हारे विचार एवं निष्कर्ष जानना चाहता हूँ।"

"तीन विकल्पों की अनुमति देता हूँ तुम्हें।"

रिचर्ड स्मिथ विचारों में डूब गए। अपने आप से बुदबुदाया, "आकाश से तारा अचानक गायब कैसे होगा भला?... सुपरनोवा?" रिचर्ड बुदबुदाए।

"पहला विकल्प, यदि उस तारे का विस्फोट होकर उसका रूपान्तर सुपरनोवा अवशेषों में हो जाता, तब दुनिया की तमाम वेधशालाओं ने इस घटना को दर्ज कर लिया होता क्योंकि विस्फोट से पहले, उस तारे की चमक में असाधारण वृद्धि हो गई होती... और यह लाल दैत्य तारा भी न था कि सुपरनोवा बने। दैत्य तारे ही विस्फोटित होकर बिखर जाते हैं।"

"बस-बस राजेश! जले पर नमक न छिड़को! दूसरी सम्भावना यह भी है कि उस तारे का रूपान्तरण न्यूट्रॉन तारे में अथवा कृष्णविवर में हो गया था। परन्तु उसका यूँ अचानक आकुंचित हो जाना असम्भव है।" रिचर्ड स्मिथ प्रश्नार्थक मुद्रा में राजेश को ताकने लगे।

"और तीसरा विकल्प क्या है?" राजेश ने शान्ति से पूछा। स्मिथ साहब करीब पाँच मिनट तक सोचते रहे। सिर खुजाते रहे। अन्त में बोले, "मैं हार गया। अब तुम्हारा विकल्प।"

"ग्रहण," राजेश मुस्कराकर बोला।

"ग्रहण? किस चीज़ का ग्रहण? इतनी दूरी से किसी तारे का ग्रहण दिखाई देने के लिए, उसे आच्छादित कर सके, इतनी बड़ी वस्तु का वहाँ होना ज़रूरी है। क्या तुम यह कहना चाहते हो कि इस तारे जितना बड़ा कोई ग्रह, उसके चारों ओर मण्डरा रहा है? तुम अच्छी तरह से जानते हो कि इतने बड़े ग्रह का होना असम्भव है।" प्रो. रिचर्ड अविश्वास से बोले।

"ग्रह नहीं है। इसे मैं भी मानता हूँ। पर रिचर्ड, तुम्हारे अपने देश का विख्यात डिटेक्टिव शर्लोक होम्स कहता है कि जब अन्य सारे विकल्प व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं तब बचे हुए विकल्प को स्वीकारो, चाहे वह कितना ही असम्भावित क्यों न हो!" राजेश ने कहा।

"पर मिस्टर राजेश! आप भी तो ग्रह के आच्छादन से इनकार कर रहे हैं। अब कौन-सा विकल्प बचा है?"

राजेश ने अपनी जेब से एक छोटा-सा कागज का टुकड़ा निकाला और उनकी ओर बढ़ा दिया। उस पर दो शब्द लिखे थे जिन्हें पढ़कर उनकी आँखें आश्चर्य से दमक उठीं। "असम्भव! ऐसा हो नहीं सकता।" वे धीरे-से बुदबुदाए और गहरे विचार में डूब गए। धीरे-धीरे उनके चेहरे पर मुस्कराहट फैली। उन्होंने राजेश का हाथ प्यार से पकड़ लिया और कहा। "होम्स को वॉटसन का सलाम।"

* * *

केवल बहुत ही महत्वपूर्ण सभाओं के लिए आरक्षित वह कमरा खचाखच भर गया था। सभी 64 सदस्य उपस्थित थे। शासक, शिक्षक, वैज्ञानिक, तकनीशियन, अर्थशास्त्री, लेखक आदि विविध क्षेत्रों के चुनिन्दा लोग इस सभा में आमंत्रित किए गए थे। सामान्यतः ये सभी हाज़िर न रहते

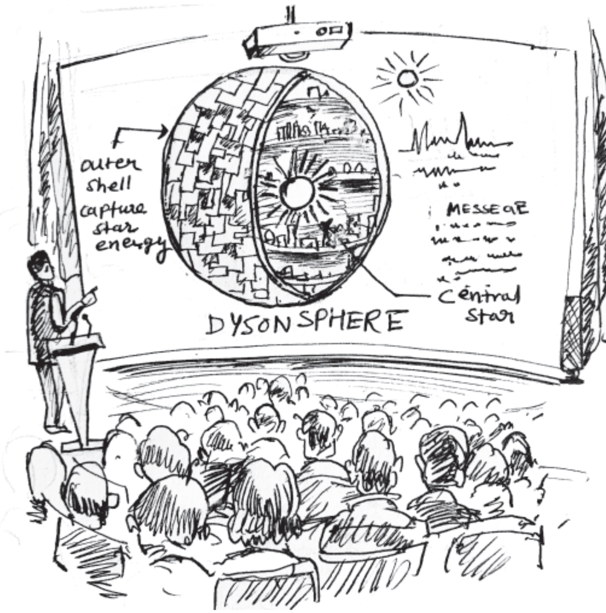

थे। परन्तु, आज की सभा का मसौदा इतना असाधारण था कि अपने ज़रूरी कामों को एक ओर रख, प्रत्येक सदस्य उपस्थित था।

सबके बैठ जाने पर अध्यक्ष महोदय उठ खड़े हुए और बोले, "दोस्तो! अपने आव्हान को अब उत्तर मिलना आरम्भ हो गया है। किन्तु, वह बड़ी ही धीमी गति से मिल रहा है। हमारी व्यवस्था उसे ग्रहण करने में तथा उसका अर्थ समझने में सम्पूर्णतः सक्षम है। इस तरह प्राप्त जानकारी अब आपके सम्मुख पर्दे पर उजागर होगी।"

अध्यक्ष महोदय अपनी जगह पर बैठ गए और सामने लगे विशाल पर्दे पर सभी की नज़रें टिक गईं। उस पर जानकारी तथा तस्वीरें दिखाई देने लगीं।

सन्देश का स्थान: तारा नम्बर 15712722 के चारों ओर भ्रमण करने वाला तीसरा ग्रह। उस ग्रहमाला में कुल 11 ग्रह हैं।

ग्रह की दूरी: उस ग्रह को अपने इस तारे की एक परिक्रमा करने में जो समय लगता है, उसे वर्ष कहते हैं। हमारा तारा नम्बर 1 तथा पड़ोसी तारा नम्बर 2 भी आपस में एक-दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं। एक परिक्रमा को पूरा करने में करीब 1022 वर्ष लग जाते हैं। सन्देश को यहाँ से उस ग्रह तक की दूरी तय करने में 17 वर्ष लग गए। यानी हमारा सन्देश वहाँ पहुँचकर जवाब

आने में 36 वर्ष लग जाएँगे। (उनके कालखण्ड की इकाई भिन्न है। उनके आँकड़े दशांक प्रणाली में होते हैं। उन्हें यहाँ अष्टांक प्रणाली में प्रस्तुत किया गया है।)

ग्रह की जानकारी देने वाली कुछ तस्वीरें पर्दे पर उजागर हुईं। पहाड़, नदियाँ, शहर, मानव, तथा प्राणियों आदि के चित्र कुछ अस्पष्ट-से थे। उसके बाद एक टिप्पणी उभरीः

'यहाँ की संस्कृति, तकनीक में बड़ी तीव्र गति से प्रगति कर रही है। फिर भी हमारे लेवल तक पहुँचने में उन्हें लम्बा समय लगेगा। हम जिस प्रकार से अपने समाज की ऊर्जा का उपयोग कर रहे हैं, उस पैमाने पर ऊर्जा उपयोग में लाने की उनकी क्षमता एवं पात्रता नहीं है। परन्तु खास बात यह है कि जिस प्रकार की अनूठी सूझ-बूझ से उन्होंने हमें खोजा है, वह काबिले तारीफ है।

...हमारे सन्देश की वजह से वे हमें नहीं खोज पाए हैं बल्कि अपनी खोज के पश्चात्, उन्होंने अपनी प्रचण्ड प्रबल रेडियो दूरबीनों को हमारी ओर मोड़ दिया और हमारे सन्देश को ग्रहण कर पाए वे।'

अब सभासदों के मन में यह प्रश्न उठा कि हमारा सन्देश मिले बगैर उन ग्रहवासियों ने हमें कैसे खोज निकाला। इस प्रश्न की अपेक्षा पहले से ही थी, अतः अगली जानकारी पर्दे पर यूँ आईः 'वे हमें किस प्रकार खोज पाए, इसका ब्यौरा उनके सन्देश में है। इस जानकारी में संयोग भी है और सन्देश भेजने वाले की अनूठी सूझ-बूझ भी।

'उस ग्रह पर बहुत पहले फ्रीमेन डाइसन नामक एक वैज्ञानिक था जो बड़ा ही विख्यात था। उसके ज्ञान के अनुसार, यदि किसी ग्रह पर बसी जीवसृष्टि अत्यधिक उन्नति कर लेती है तो उसके लिए आवश्यक विशाल ऊर्जा का बन्दोबस्त करना पड़ेगा। इसके लिए एक कृत्रिम गोलाकार बस्ती का निर्माण कर ऊर्जा बन्दोबस्त करना होगा जिसे हम *डाइसन गोल पिण्ड* के नाम से जानेंगे। *डाइसन गोल पिण्ड* यानी किसी तारे को केन्द्रबिन्दु पर रखकर, उसे चहूँ ओर से घेरने वाला गोला। ग्रह तथा तारे के बीच की दूरी की त्रिज्या वाला एक गोला, दूसरे ग्रह से सामग्री लेकर तैयार करना पड़ेगा। किसी गेंद की तरह यह गोला अन्दर से खोखला होगा और उसका पृष्ठ भाग पतला होगा। तारे से निकलने वाला प्रकाश इस गोले से बाहर नहीं आ सकेगा। उस समूची ऊर्जा का उपयोग, गोले के अन्दर बसी जीवसृष्टि कर सकती है।

'अब आपकी समझ में यह बात आ गई होगी कि अपनी बस्ती भी इसी प्रकार के डाइसन गोले के अन्दर है। यह बस्ती अपने तारा नं. 1 की ऊर्जा का उपयोग, कार्यक्षम पद्धति से कर रही है। हमारी बस्ती को अस्तित्व में आए बहुत बड़ा

कालान्तर बीत गया है। इस प्रकार के गोले को तैयार करने की क्षमता हमारी संस्कृति में लाने के लिए जो समय लगा है, उसे देखते हुए यह तय है कि डाइसन के समकालीनों द्वारा इसकी कल्पना करना तथा इसे अस्तित्व में लाना बहुत कठिन है। उनके सहस्त्र वर्षों में भी यह सम्भव नहीं।

'डाइसन के गोले, विश्व में अन्य जगहों पर भी उपस्थित हो सकते हैं, यह उनका एक अनुमान था और इसीलिए वे हमें खोज पाए।

'हमारा गोला जिस तारे को घेरे हुए है, वह नं. 1 तथा नं. 2, आपस में एक-दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं, इसे आप जानते ही हैं। परन्तु, दूर से देखने वालों को तारा नं. 1 दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह गोले में बन्द है। किसी खास सतह से देखने पर तारा नं. 2 को, हमारे गोले का लगा ग्रहण दिखाई दे सकता है। यानी देखने वालों तथा तारा नं. 2 के बीच यदि हमारा गोला आ जाता है तभी ग्रहण देखना सम्भव है।

'जिन ग्रहवासियों ने हमारा पता लगाया है, उनकी काल गणना के अनुसार 1022 वर्षों में हमारे तारायुगल का आपसी परिभ्रमण का एक फेरा पूरा हो जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 1022 वर्षों की कालावधि में तारा नं. 2 को एक बार ग्रहण अवश्य लगेगा और तारा नं. 2 अचानक अदृश्य हो जाएगा, यह बात उस ग्रह के किसी चतुर निरीक्षक के ध्यान में आई। उस ग्रह पर ऐसे लोगों की औसत आयु 100 से 102 वर्ष होने की वजह से 1022 वर्षों में घटित एकाध घटना उनकी दृष्टि से एक संयोग ही कहलाएगी।

'उस चतुर निरीक्षक का नाम है *राजेश गुप्ता।* तारा अदृश्य होने की कारण मीमांसा करते-करते वह डाइसन गोले की सम्भावना पर आया और उसे यही एकमात्र विकल्प ठीक लगा।

'राजेश गुप्ता तथा उनके सहकर्मी रिचर्ड स्मिथ, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भले ही डाइसन गोला उन्हें न दिखा हो, उसमें से बाहर निकलने वाले प्रकाश की किरणें इन्फ्रारेड दूरबीन की सहायता से दिख जानी चाहिए। तारे की विशाल ऊर्जा (प्रकाश) को हम उपयोग में लाते हैं और उसे ऊष्णता में रूपान्तरित करते हैं। अन्त में, वह ऊर्जा ऐसी किरणों द्वारा बाहर निकलती है (इन किरणों को किसी और नाम से सम्बोधित किया)। इन्फ्रारेड दूरबीन से राजेश तथा रिचर्ड ने हमारी दिशा में अवलोकन लिए और उन्हें अपने गोले का आस्तित्व दिखाई दिया।'

पर्दे पर दी जा रही जानकारी खत्म हो गई। अध्यक्ष ने कहा, "इस दिशा में आगे क्या करना है, इसे हम तय करेंगे। हम पहले राजेश तथा रिचर्ड को बधाई का सन्देश भेजेंगे, साथ ही हमारी खोज करने वालों की

सूझ-बूझ की प्रशंसा का सन्देश भी भेजेंगे।"

सभी सभासदों ने अपने माथे के ऐंटेनाओं को तानकर सम्मति दर्शाई।

* * *

करीब सत्तर साल की उम्र वाला राजेश अपने बँगले के पिछवाड़े, बगीचे में बागवानी कर रहा था। पिछले पाँच वर्षों से उसने अनुसन्धान कार्य बन्द कर दिया था, परन्तु अपनी रुचि के विषय का अध्ययन निरन्तर जारी था। किताबें पढ़ने तथा बागवानी, दोनों में उसे बड़ी रुचि थी।

उसकी कलाई में बँधे घड़ीनुमा उपकरण से सीटी की सी पतली आवाज़ आई। भुनभुनाते हुए उसने एक बटन दबाया और कहा, "राजेश।"

"हैलो, राजेश! मैं रिचर्ड बात कर रहा हूँ। स्कॉटलैंड से। कैसे हो?"

"अच्छा हूँ। मौसम बढ़िया है यहाँ। पर शायद कुछ और कहने के लिए फोन लगाया होगा तुमने," राजेश मुस्कराते हुए बोला।

"राजेश, एक बड़ी महत्वपूर्ण खबर है। अरिसीबो की दूरबीन के पास, अपने तारे की ओर से प्रतिसन्देश आया है।"

राजेश के पूरे बदन में, बिजली की सी लहर तैर गई। पूरे 30 वर्षों बाद सन्देश आया है। क्या सन्देश होगा भला? रिचर्ड ने आगे कहा, "अरिसीबो से मुझे अभी एक कॉल आया है। वे तुम्हें भी जानकारी भेज रहे हैं। तुम्हारे टी.वी. सेट में अब तक जानकारी पहुँच गई होगी। उन्होंने हमें बधाई दी है, उन्हें खोजे जाने पर, और हाँ... गणित तथा विज्ञान के कुछ कूट प्रश्न जो तुमने पूछे थे, उनके जवाब भी। अधिक समय लेना नहीं चाहता मैं, तुम्हें भी उत्सुकता होगी जानने की! बाय!"

स्मिथ का फोन बन्द होने तक राजेश ने अपना टी.वी. ऑन कर दिया था। उसके

सांकेतिक नम्बर पर ‘इलेक्ट्रॉनिक मेल’ में जानकारी आने वाली थी।

आज भी राजेश के स्मरण में वे बीस कूट प्रश्न थे। पिछले तीस वर्षों में उनमें से सिर्फ पाँच प्रश्नों का हल मिल पाया था। प्रत्येक हल ने, हल करने वाले को वैश्विक ख्याति दिलवाई थी। अब तो घर बैठे-बैठे, बचे हुए सारे प्रश्नों के हल मिलने वाले थे। जिस प्रकार कोई भुक्खड़ पकवानों की थाली पर टूट पड़ता है, ठीक उसी अन्दाज़ में वह टी.वी. पर प्रसारित हो रही सांकेतिक भाषा को पढ़ने-समझने में मशगूल हो गया।

इस असीम आनन्द के साथ-साथ एक उदासी भरा विचार भी उसके मन में कौंध गया। उसने कुछ याद करने की कोशिश की। कोशिश के उपरान्त उसे वह घटना याद भी आ गई।

स्कूल में वह एक मेधावी छात्र था। समस्त प्रश्नों के हल स्वयं खोजने का प्रयास करता रहता था। उसे याद आया कि आठवीं कक्षा में एक बार उसे बहुत-से प्रश्नों के उत्तर मिल नहीं पा रहे थे। परीक्षा निकट थी। तब उसके एक सहपाठी ने लाकर उसे गाइड जैसी कोई किताब दी। सारे प्रश्नों के जवाब उस पुस्तक में दिए हुए थे। उन्हें पढ़कर उसने परीक्षा की तैयारी तो पूरी कर ली, पर उत्तरों को स्वयं खोज निकालने का सन्तोष एवं आनन्द उसमें पूरी तौर पर नदारद था।

आज वह फिर वही असन्तोष महसूस कर रहा था। प्रकृति में छिपी सभी पहेलियों के गूढ़ एवं कूट प्रश्नों के हल यदि इस प्रकार, 30 वर्षों के बाद अपने आप उपलब्ध होने वाले होंगे तो इन्सान अपने स्वावलम्बन के आधार पर नई खोज कैसे कर पाएगा? उसकी लगन की प्रवृत्ति कमज़ोर नहीं हो जाएगी क्या?

राजेश खिन्न भाव से, टी.वी. से जुड़े यंत्र से बाहर आते, छपे हुए कागज़ों एवं जानकारियों को निहारता रहा।

जयंत विष्णु नारलीकर (1938-2025): प्रबुद्ध वैज्ञानिक और विज्ञान कथाकार। कैंब्रिज से गणित में डिग्रियाँ हासिल करने के बाद उन्होंने खगोल-विद्या और खगोल-भौतिकी में विशेष प्रावीण्य प्राप्त किया। किंग्ज़ कॉलेज के फेलो और इंस्टिट्यूट ऑफ थिओरेटिकल एस्ट्रोनॉमी के संस्थापक सदस्य के रूप में कुछ समय कैंब्रिज में रहे। IUCAA (Inter-University Centre for Astronomy and Astrophysics), पुणे के संस्थापक सदस्य। नारलीकर ‘पद्मभूषण’ और ‘पद्मविभूषण’ सहित कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विजुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

ईश्वर की कहानियाँ

विष्णु नागर

स्वर्ग में कुछ दिनों साफ-सफाई की व्यवस्था क्या गड़बड़ हुई कि वहाँ मच्छर पैदा हो गए।

स्वर्ग में ईश्वर के अलावा कोई था नहीं। लिहाज़ा, मच्छरों ने मजबूर होकर अपने जन्मदाता को ही अपना पालनहार बना लिया। अर्थात् वे ईश्वर का ही खून पीने लगे। ईश्वर चूँकि ईश्वर थे इसलिए उनका खून भी ईश्वरीय अर्थात् अत्यन्त सुस्वाद एवं तृप्तिकर था। मच्छर खूब मोटे होने लगे। कछुए की तरह सख्त और चिरायु भी होने लगे।

स्वर्ग कोई धरती तो था नहीं कि ईश्वर जब चाहे मार देते। स्वर्ग, स्वर्ग था और उसमें किसी को मारा नहीं जा सकता था। कुछ ईश्वरों ने चोरी-छुपे मारने की कोशिश भी की तो मच्छर मरे नहीं। वे भी ईश्वर की तरह अमर हो चुके थे। आखिर वे ईश्वर का खून रोज़ पी रहे थे।

स्थिति यह आ गई कि ईश्वर को सोचना पड़ा कि स्वर्ग में मच्छर रहें या ईश्वर। काफी बहस-मुबाहिसे के बाद तय हुआ कि ईश्वर स्वर्ग में नहीं रहेंगे, पृथ्वी पर रहेंगे। वहाँ मच्छरों को मारने की इजाज़त है और उन्हें भगाना भी आसान है।

विष्णु नागर: बचपन और छात्र जीवन शाजापुर, मध्य प्रदेश में बीता। सन् 1971 से दिल्ली में स्वतंत्र पत्रकारिता। *नवभारत टाइम्स* तथा *दैनिक हिंदुस्तान, कादंबिनी, नई दुनिया* और *शुक्रवार समाचार* साप्ताहिक से जुड़े रहे। भारतीय प्रेस परिषद के पूर्व सदस्य एवं महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की कार्यकारिणी के पूर्व सदस्य। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

चित्र: कैरन हैडॉक: शोधकर्ता, शिक्षिका, वैज्ञानिक, अध्यापिका और चित्रकार। उन्होंने अमेरिका में बायोफिज़िक्स में अपनी पीएच.डी. और पोस्टडॉक्टरल अध्ययन पूरा करने के बाद भारत में काम शुरू किया। अपने सभी प्रयासों में, उनका प्रमुख सरोकार समाज के वंचित वर्गों के प्रति रहा है, और वे सामाजिक परिवर्तन के लिए कला और विज्ञान शिक्षा - दोनों का उपयोग करती रही हैं।

यह कहानी हरियाणा राज्य संसाधन केन्द्र द्वारा तैयार की गई विष्णु नागर की किताब *ईश्वर की कहानियाँ* से साभार।

ततैया: अण्डों-बच्चों के लिए बिल बनाती है

कालू राम शर्मा

बगीचे में टहलते हुए घास के बीच सूखी ज़मीन पर एक चमकीले श्याम-वर्ण जन्तु की हरकत पर मेरा ध्यान अटक गया। मैं पहचान पाता हूँ कि यह कोई कीट है। उसे बिना परेशान किए, मैं उसके क्रियाकलापों पर गौर करने लगता हूँ। दरअसल, वह कीट ज़मीन में बिल खोद रहा है।

मुँह और टाँगों के दम पर वह बिना रुके, बिल बनाने में जुटा हुआ है। बिल की मिट्टी को वह आसपास फैलाता जा रहा है। बीच-बीच में वह उड़ान भरता है और लौटकर फिर से बिल की खुदाई में जुट जाता है।

मैंने इसे पहचानने की कोशिश की। यह एक ततैया है। मैंने इस ततैया के साथ तीन दिन बिताए।

बेशक, ततैया बिल इसलिए नहीं खोद रही थी कि वह उसमें रहने वाली है। बल्कि बिल उसकी सन्तान के लिए है, जिनका उसमें जन्म होने वाला है। यह उसके प्रजनन का वक्त भी है।

राज़ की बात यह है कि मादा ततैया शाकाहारी होती है मगर अपनी लार्वा सन्तान के लिए वो माँसाहार भोजन की व्यवस्था करती है। लार्वा के रहने के लिए बिल बनाना एक काम है, और दूसरा काम है मादा ततैया के द्वारा उनके लिए भोजन की व्यवस्था करना। दरअसल, लार्वा का भोजन एक टिड्डा होगा जिसकी व्यवस्था मादा करती है।

ततैया ने बिल के लिए ऐसी जगह को चुना जहाँ जानवरों या मानव की आवाजाही न हो।

इस ततैया को अँग्रेज़ी में ग्रेट ब्लैक वास्प कहा जाता है। इसे हिन्दी में बड़ी-काली ततैया कह सकते हैं। मादा ततैया के सिर के आगे दो सुस्पष्ट ऐंटिना और शरीर पर तीन जोड़ी टाँगें होती हैं। शरीर तीन भागों - सिर, वक्ष और उदर में बँटा हुआ और पारदर्शी, मज़बूत पंख जो कि लगभग दो इंच की लम्बाई लिए होते हैं।

मादा जो बिल खोद रही है, वह उसके ही दूर के रिश्तेदार, ज़िन्दा टिड्डों की कब्रगाह होगी। वह पहले इन टिड्डों को बेहोश करती है। टिड्डे को बिल में दफन करने से पहले उसके बदन पर अण्डे देगी। अण्डे से निकले लार्वा बेहोश टिड्डे को नोच-नोचकर खाएँगे और पनपेंगे।

बिल की ढाल

ततैया द्वारा ज़मीन में जो बिल खोदा जा रहा है, वह लगभग 45

डिग्री के कोण पर होता है। अर्थात् बिल ज़मीन में एकदम सीधा न होकर तिरछा होता है। खोदने पर जो भुरभुरी मिट्टी निकली, उसे वह बिल के सामने फैलाती जा रही है। ऐसा लगता है कि खोदने के साथ-ही-साथ वह बिल के सामने एक रन-वे भी तैयार कर रही है। रन-वे एकदम साफ-सुथरा और ऐसा कि वहाँ कोई बड़े कंकड़ या घास के टुकड़े इत्यादि न हों। यह बात मुझे बाद में समझ में आई कि आखिर वह बिल के सामने रन-वे क्यों बनाती है।

अब वह टिड्डे को अपने कब्ज़े में करेगी और उसे दंश चुभोएगी। पहला टिड्डे की गर्दन में और दो बार उसकी छाती या वक्ष में। कुछ ही देर में ततैया के दंश से टिड्डा लकवे का शिकार हो जाता है और फिर ततैया द्वारा मज़बूत मुखांगों व टाँगों में पकड़कर उड़ते हुए बिल तक लाया जाएगा।

अब बेहोश टिड्डे को बिल के सामने बने रन-वे पर पटक दिया जाता है।

बेहोश टिड्डे को बिल में ले जाना

ततैया ने बेहोश टिड्डे को अपने मुँह में दबाया और उसे खींचते हुए गड्ढे की ओर ले जाने लगी। वह यह कार्य बड़ी फुर्ती और दक्षता से कर रही थी। उल्टे चलते हुए वह बेहोश टिड्डे को खींचकर अपने बिल के भीतर ले जाती है।

कुछ और अवलोकन

एक और रोचक अवलोकन कि मैंने जिस जगह पर ततैया को बिल खोदते पाया, उसके आसपास तीन-चार अन्य ततैया भी अपने-अपने बिल खोद रही थीं। हाँ, मगर वे एक-दूसरे के बिल पर धावा नहीं बोलतीं। हालाँकि, अगर कोई एक ततैया दूसरे के बिल की तरफ बढ़े तो फिर ज़रूर दूसरी ततैया आक्रामक रवैया अपनाती देखी गई है। एक बात और देखने में आई कि अगर इस दौरान कोई अन्य जीव, मसलन चींटी या गिंजाई बिल के आसपास आने की कोशिश करे तो ततैया उस पर झपट्टा मारती है और उसे भगा देती है।

प्रकृति में ततैया और टिड्डे का रिश्ता काफी विचित्र और मज़ेदार है। यह रिश्ता आपको हिंसक लग सकता है, लेकिन कुदरत में ऐसा बहुत कुछ लगातार घटता रहता है।

अगर टिड्डे न रहें, तो ततैया कैसे बचेगी? शायद नहीं बचेगी। दरअसल, टिड्डों की बदौलत ही ततैया की कई प्रजातियों का वंश आगे बढ़ता है। दिलचस्प बात यह है कि टिड्डा और ततैया, दोनों ही आर्थ्रोपोडा संघ के कीट हैं। टिड्डा तो पत्तियों और अन्य वनस्पतियों को कुतरते हुए अक्सर दिखाई देता है, और इसकी सन्तान भी शाकाहारी होती हैं। वयस्क ततैया भी मुख्यतः फूलों का रस और मधु

ग्रहण करती है। वह अपने भोजन के लिए टिड्डों का शिकार नहीं करती। लेकिन अपनी सन्तानों के पालन-पोषण के लिए वह टिड्डों को भोजन के रूप में उपलब्ध कराती है। इस प्रकार, टिड्डे ततैया की अगली पीढ़ी के जीवन-चक्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हालाँकि, विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि यह ततैया चार-पाँच प्रकार के टिड्डों को अपना शिकार बनाती है। मैंने स्वयं इसके बिल के पास दो भिन्न प्रकार के टिड्डे देखे, जिन्हें मादा ततैया डंक मारकर बेहोश अवस्था में वहाँ लाई थी।

टिड्डे पर अण्डे देना

गड्ढे के भीतर बेहोश टिड्डे को दफन करते समय मादा ततैया उसकी पहली और दूसरी जोड़ी टाँगों के बीच, शरीर के निचले भाग पर एक अण्डा चिपका देती है। इसके बाद वह बिल के मुख को फिर से मिट्टी से बन्द कर देती है। बस, यहाँ मादा ततैया की भूमिका समाप्त हो जाती है। वो दोबारा उस बिल की तरफ झाँकने के लिए भी नहीं आती।

एक ही बिल में मादा ततैया एक से अधिक टिड्डों को दफन कर सकती है और प्रत्येक टिड्डे पर एक-एक अण्डा चिपका देती है। इन अण्डों से लार्वा निकलते हैं। लार्वा बेहोश पड़े टिड्डों को भोजन के रूप में उपयोग करते हुए तेज़ी-से बढ़ते हैं और धीरे-धीरे उन्हें खा जाते हैं। जीवन-चक्र का अगला चरण पूरा करते हुए लार्वा जल्द ही वयस्क ततैया के रूप में बिल से बाहर निकलता है।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

यह उनकी अप्रकाशित रचना है।

ततैया पर *संदर्भ* में प्रकाशित अन्य लेख पढ़िए- ततैया की तिकड़मबाज़ी में फँसी एक मकड़ी (अंक-73, जनवरी-फरवरी, 2011), कॉकरोच की बुद्धि फेल करने वाली ततैया (अंक-74, मार्च-अप्रैल, 2011), विज्ञान का शौक और भारतीय आदिम सामाजिक ततैयों का अध्ययन (अंक-77, सितम्बर-अक्टूबर, 2011), भारतीय आदिम सामाजिक ततैया परोपकार से सरोकार (अंक-78, नवम्बर-दिसम्बर, 2011), परजीवी ततैया, इल्ली और वायरस की संगत (अंक-111, जुलाई-अगस्त, 2017)

सवालीराम

सवाल: वर्षा आने पर चींटियों और दीमक के पंख क्यों निकल आते हैं?

– आश्रमशाला बीजूधावड़ी, धारणी, ज़िला अमरावती, महाराष्ट्र

जवाब-1: आपने कई बार पंख वाली चींटियाँ और दीमक देखी होंगी, लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि ये पंखधारी कीट बरसात के मौसम में ही अधिक क्यों दिखाई देते हैं?

प्रकृति में जीव-जन्तु और वनस्पतियाँ अपने जीवन का संचालन करते हुए अपनी पीढ़ियों को आगे बढ़ाते हैं। जो जीव प्रकृति के नियमों के अनुरूप स्वयं को ढाल लेते हैं, वे अपना जीवन-चक्र सफलतापूर्वक पूरा कर पाते हैं।

यदि कीटों की बात करें, तो वे आर्थ्रोपोडा संघ और इन्सेक्टा (Insecta) वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इनमें चींटियाँ और दीमक विशेष रूप से रोचक सामाजिक कीट हैं। इनकी कुछ प्रजातियों में वर्षा ऋतु के दौरान पंख विकसित हो जाते हैं। ऐसे पंखयुक्त नर और मादा कीटों को अलेट्स (Alates) या प्रजनन कीट कहा जाता है। वर्षा ऋतु इनके प्रजनन के लिए अत्यन्त अनुकूल मानी जाती है, इसलिए इस मौसम में पंख वाली चींटियाँ और दीमक बड़ी संख्या में दिखाई देती हैं।

बरसात के मौसम में वातावरण में आर्द्रता (नमी) अधिक होती है, जिससे इन कीटों के शरीर में जल की कमी होने और उनके सूखने का खतरा कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त, वर्षा से नम हुई मिट्टी नई कॉलोनियों की स्थापना और अण्डे देने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती है। इस मौसम में तापमान भी अपेक्षाकृत मध्यम रहता है, जिससे इनके जीवित रहने और सफलतापूर्वक प्रजनन करने की सम्भावना बढ़ जाती है।

इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों के कारण पंखयुक्त नर और मादा कीट अपनी कॉलोनियों या घोंसलों से बाहर निकलकर उड़ान भरते हैं और उपयुक्त प्रजनन साथी की खोज करते हैं। नर और मादा के मिलने पर उनके बीच समागम (मैथुन) होता है। प्रजनन के उद्देश्य से की जाने वाली इस सामूहिक उड़ान को वैवाहिक उड़ान (nuptial flight) या मैथुनी उड़ान कहा जाता है। यह प्रक्रिया नई कॉलोनियों की स्थापना और प्रजाति के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वैवाहिक उड़ान और समागम के

पश्चात् नर और मादा ज़मीन पर उतर आते हैं। सामान्यतः नर कुछ समय बाद मर जाता है, जबकि निषेचित मादा अपने पंख त्याग देती है। इसके बाद वह किसी सुरक्षित स्थान, जैसे नम मिट्टी, सड़ी हुई लकड़ी या पत्थरों के नीचे, नया आश्रय खोजती है और नई कॉलोनी की स्थापना करती है।

चूँकि उड़ान और प्रजनन का उद्देश्य पूरा हो चुका होता है, इसलिए पंखों की भूमिका खत्म हो जाती है। इसके बाद मादा अण्डे देती है और प्रारम्भिक अवस्था में उनकी देखभाल भी करती है। अण्डों से निकले शिशु क्रमशः विकसित होकर नई कॉलोनी का निर्माण करते हैं, जिससे प्रजाति का विस्तार और निरन्तरता बनी रहती है।

शाम के समय ये पंखयुक्त कीट स्ट्रीट लाइटों और घरों में जलने वाले बल्बों एवं ट्यूब लाइट के प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं और उनके आसपास मण्डराने लगते हैं। प्रकाश के प्रति इस आकर्षण को प्रकाशानुवर्तन (phototaxis) कहा जाता है। उड़ान और प्रजनन प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद इनकी बड़ी संख्या शीघ्र ही मर जाती है, जबकि कई कीट अपने पंख त्याग देते हैं। यही कारण है कि प्रायः अगली सुबह प्रकाश स्रोतों के आसपास बड़ी संख्या में मृत चींटियाँ, दीमक तथा उनके बिखरे हुए पंख दिखाई देते हैं।

इसलिए अगली बार जब आप बरसात के मौसम में पंख वाली चींटियों या दीमकों को उड़ते हुए देखें, तो समझ जाइएगा कि वे अपनी प्रजनन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण चरण से गुज़र रही हैं और शीघ्र ही नई कॉलोनियों की स्थापना करने वाली हैं।

संध्या गौर: विगत 10 वर्षों से शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद में अध्यापन कार्य कर रही हैं। युवा पीढ़ी के साथ कुछ नया सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में रुचि रखती हैं। फिलहाल, विद्यार्थियों के साथ जैव विविधता के प्रोजेक्ट पर काम कर रही हैं।

— — — — — —

जवाब-2: चींटियाँ अत्यन्त संगठित सामाजिक कीट हैं। इनके एक समूह या कॉलोनी में हज़ारों सदस्य होते हैं, जिनमें एक बड़ी आकार की रानी चींटी होती है। रानी का मुख्य कार्य लगातार अण्डे देना होता है। इन अण्डों से निकलने वाली अधिकांश चींटियाँ कार्यकर्ता (वर्कर) कहलाती हैं। यही भोजन जुटाने, बाम्बी की सफाई करने, शत्रुओं से रक्षा करने और पूरे समूह की देखभाल जैसे सभी कार्य करती हैं। सामान्यतः इन कार्यकर्ता चींटियों के पंख नहीं होते।

बरसात के मौसम की शुरुआत में

रानी कुछ विशेष अण्डे देती है, जिनसे पंखयुक्त नर और मादा (राजकुमारी) चींटियाँ विकसित होती हैं। इन्हें प्रजनन चींटियाँ या अलेट्स कहा जाता है। ये अपनी बाम्बी से बाहर निकलकर हवा में उड़ती हैं और उड़ान के दौरान ही समागम करती हैं। इन्हीं पंखयुक्त चींटियों को हम सामान्यतः 'पंख वाली चींटियाँ' कहते हैं। ये आकार में सामान्य कार्यकर्ता चींटियों से कुछ बड़ी होती हैं और नई कॉलोनियों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

बारिश के कारण मिट्टी नरम हो जाती है, जिससे मादा चींटी अर्थात् राजकुमारी आसानी-से उसमें सुरंग बनाकर नया बिल या बाम्बी तैयार कर लेती है और अण्डे देने का कार्य प्रारम्भ कर देती है। इस समय उसके पंख झड़ जाते हैं, क्योंकि प्रजनन और उड़ान का उद्देश्य पूरा हो चुका होता है। हालाँकि, इन्हीं पंखों की सहायता से वह अपनी जन्मस्थली कॉलोनी से दूर जाकर नया आश्रय खोज पाती है और अपनी स्वतंत्र कॉलोनी की स्थापना कर सकती है।

समागम के बाद यही राजकुमारी एक नई रानी चींटी बन जाती है। वह कई महीनों, और कुछ प्रजातियों में कई वर्षों तक जीवित रहकर लगातार अण्डे देती रहती है। इसके विपरीत, नर चींटियों का जीवन अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है और वे सामान्यतः समागम के कुछ दिनों बाद ही मर जाती हैं।

अरविन्द गुप्ते: उच्च शिक्षा में एक लम्बे दौर तक प्राणीशास्त्र का शिक्षण देने के बाद डाइट, उज्जैन के प्राचार्य पद पर भी रहे हैं। 1997 में प्रशासन अकादमी, भोपाल से सेवानिवृत्त। *एकलव्य* के शैक्षणिक कार्यक्रमों से लम्बा जुड़ाव। इन्दौर में निवास।

इस बार का सवाल: भारतीय रुपया अमेरिकी डॉलर के मुकाबले क्यों गिरता है? इसके पीछे कौन-कौन से कारण होते हैं? क्या रुपया गिरने से भारत को नुकसान पहुँचता है, और क्या इस स्थिति से किसी देश को लाभ भी होता है?

- मानवी मुळे, कक्षा-7, सेंट जोसेफ कॉन्वेंट स्कूल, खंडवा, मप्र

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

पंखवाली चींटियाँ

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।